शोधादर्श

३३

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

नवम्बर १९९७

शोधादर्श

३३

प्रकाशक :
तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ
नवम्बर १९९७

संस्थापक एवं आद्य सम्पादक : (स्व.) डा० ज्योति प्रसाद जैन
प्रबन्ध/प्रधान सम्पादक एवं प्रकाशक : श्री अजित प्रसाद जैन
महामन्त्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र०
पारस सदन, आर्यनगर, लखनऊ—२२६ ००४
सम्पादक मंडल : डा० शशि कान्त, श्री रमा कान्त जैन

★ विषय-क्रम ★

१. गुरुगुण-कीर्तन—भट्टारक सकलकीर्ति —श्री रमा कान्त जैन २०५

२. वृद्धों की समस्या —डा० ज्योति प्रसाद जैन २०८

३. सम्पादकीय—जैन समाज को अल्पसंख्यक की मान्यता
—श्री अजित प्रसाद जैन २१२

४. आवश्यकों की प्राचीन परम्परा—डा० ऋषभचन्द्र जैन 'फौजदार' २२१

५. हिन्दी रासो काव्य परम्परा में जैन कवियों का योगदान
—डा० (कु०) मालती जैन २३०

६. राजा चन्द्रगुप्त और आचार्य भद्रबाहु —श्री वेद प्रकाश गर्ग २३९

७. भारत के इतिहास के पुनर्निर्माण में
जैन सामग्री के उपयोग की आवश्यकता —श्री रमा कान्त जैन २४६

८. विचार-बिन्दु : वैदिक साहित्य में सामाजिक चेतना
—डा० (श्रीमती) अलका अग्रवाल २५१

९. पर्यावरण और जीव दया :
दया भाव (Compassion)—संविधान की अपेक्षा
—श्री कैलाश भूषण जिन्दल २५३

१०. चिन्तन कण : नास्तिक क्यों ? —डा० शशि कान्त २६०

११. जिज्ञासा —श्री शांतिलाल के० शहा २६६

१२. साहित्य सत्कार :
आचार्य समीक्षा —श्री अजित प्रसाद जैन २६७

मूलाचार; सागार धर्मामृत; नया सन्देश —श्री रमा कान्त जैन २७०
सरिता; अनेकान्त; तीर्थंकर —डा० शशि कान्त २७३

१३. समाचार विमर्श :
आशा की एक किरण —श्री अजित प्रसाद जैन २७६

१४. श्री महावीरजी की सहस्राब्दि —श्री रमा कान्त जैन २८२

१५. पूत कपूत से मां बांझ भली —श्री राजीव कान्त जैन २८३

१६. अभिनन्दन २८४

१७. समाचार विविधा २८६

१८. शोक संवेदन २९०

१९. आभार २९१

२०. पाठकों की दृष्टि में २९१

२१. अल्पसंख्यकवाद —डा० शशि कान्त २९९

२२. इस अंक के लेखक ३०१

२३. अनुक्रमणिका शोधादर्श ३१ से ३३ ३०२

मूल्य १५ रु०

वार्षिक शुल्क ४० रु० (मनीआर्डर द्वारा प्रेष्य)

आवश्यक

कृपया वर्ष १९९८ का वार्षिक शुल्क ४० रु० (चालीस रुपये) मनीआर्डर द्वारा 'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति उ. प्र., ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४' को यथाशीघ्र भेजने का अनुग्रह करें।

—प्रबन्ध सम्पादक

आवश्यक सूचना

शोधादर्श चातुर्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक मार्च, जुलाई व नवम्बर में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमन्त्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिए और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहिएं। यथासम्भव लेख ३—४ टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। **लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें।**

शोधादर्श में समीक्षार्थ पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं की **दो प्रतियां** भेजी जायें।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु **शोधादर्श** का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक / पत्रिका सम्पादक को 'ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४' के पते पर भेजे जायें।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखों में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के संबंध में लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों/न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

—प्रबन्ध सम्पादक

निवेदन

सुधि पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा उद्बोधन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुंचने की सूचना भी देवें।

— सम्पादक मण्डल

मुद्रक : रत्न-ज्योति प्रेस, चारबाग, लखनऊ-४ (उ० प्र०)

णाणं णरस्स सारं - सच्चं लोयम्मि सारभूयं

शोधादर्श-३३

वीर निर्वाण संवत् २५२४ नवम्बर १९९७ ई०

गुरुगुण-कीर्तन

भट्टारक सकलकीर्ति

श्री कुन्दकुन्दान्वयभूषणोऽथ बभूव विद्वान् किल पद्मनन्दी ।
मुनीश्वरो वादिगजेन्द्रसिंहः प्रतापवान् भूवलये प्रसिद्धः ।।
तत्पट्टपंकेजविकासभास्वान् बभूव निर्ग्रन्थवरः प्रतापी ।
महाकवित्वादिकलाप्रवीणस्तपोनिधिः श्रीसकलादिकीर्तिः ।।

—ब्र० जिनदास कृत **हरिवंशपुराण**, ३९, ३५-३६
तथा **रामचरित्र**, ८३, १८३-१८४

भावार्थ—भूमि पर प्रसिद्ध श्री कुन्दकुन्दाचार्य के अन्वय के भूषण, मुनीश्वर, वादी रूपी गजेन्द्रों के लिये सिंह समान प्रतापी विद्वान पद्मनन्दी हुए । उनके पट्ट पंकज को विकसित करने वाले सूर्य, निर्गन्थों में श्रेष्ठ, प्रतापी, महाकवित्व आदि कलाओं में प्रवीण, तपोनिधि श्री सकलकीर्ति हुए ।

श्रीकुंदकुंदान्वयमौलिरत्नं श्रीपद्मनंदी विदितः पृथिव्याम् ।
सरस्वतीगच्छ विभूषणं च बभूव भव्यालिसरोजहंसः ।।
ततोभवत्तस्य जगत्प्रसिद्ध पट्टे मनोज्ञे सकलादिकीर्तिः ।
महाकविः शुद्धचरित्रधारी निर्ग्रन्थराजा जगति प्रतापी ।।

—ब्र० जिनदास कृत **जम्बूस्वामिचरित्र**, ११, २३-२४

भावार्थ—श्री कुन्दकुन्दाचार्य के अन्वय के मुकुट के रत्न और सरस्वती गच्छ के आभूषण स्वरूप, भव्य अलियों (भ्रमरों) और सरोजों से युक्त मानसरोवर के हंस के समान जगत्प्रसिद्ध श्री पद्म-

नन्दी हुए। तदनन्तर उनके जगत्प्रसिद्ध मनोज्ञ पट्ट पर महाकवि, शुद्ध चरित्र के धारक, निर्ग्रन्थराज, जगत में प्रतापी सकलकीर्ति हुये।

उपर्युक्त श्लोकों में ब्र० जिनदास ने जिन श्री सकलकीर्ति का सादर स्मरण किया है वह, उपर्युल्लिखित ग्रन्थों में प्रत्येक सर्ग के अंत में रचनाकार द्वारा किये गये उल्लेखानुसार, उनके गुरु भट्टारक श्री सकलकीर्ति थे। उक्त ग्रन्थों की प्रशस्तियों से यह भी विदित होता है कि भट्टारक सकलकीर्ति, जो भट्टारक पद्मनन्दी के पट्ट पर बैठे थे, के पश्चात उनके पट्ट पर भट्टारक भुवनकीर्ति बैठे थे और यह भुवनकीर्ति रचनाकार ब्र० जिनदास के गुरुभाई थे।

भट्टारक सम्प्रदाय पुस्तक में लेखांक ३३१ से ३३४ पर उद्धृत क्रमशः संवत् १४९०, १४९२, १४९४ एवं १४९७ के ३ मूर्ति लेखों तथा १ शिलालेख से विदित होता है कि उक्त अवधि में सकलकीर्ति के उपदेश से भक्त श्रावकों द्वारा मूर्तियों की प्रतिष्ठा कराई गई थी और आबू तीर्थ की ससंघ यात्रा की गई थी। यह भी ज्ञात होता है कि श्री कुन्दकुन्दाचार्य अन्वय के श्री मूलसंघ नन्दी संघ, बलात्कार गण, सरस्वती गच्छ में भट्टारक पद्मनन्दी के पट्ट पर मुनि श्री सकलकीर्ति के भाई श्री शुभ चन्द्र आसीन रहे। उक्त पुस्तक से ही यह भी विदित होता है कि भट्टारक पद्मनन्दी की तीन पीठ थीं जिनमें से जयपुर-दिल्ली पीठ पर उनके प्रथम शिष्य शुभचन्द्र (सकलकीर्ति के भ्राता) थे, ईडर की पीठ पर द्वितीय शिष्य सकलकीर्ति थे तथा सूरत की पीठ पर तृतीय शिष्य देवेन्द्रकीर्ति भट्टारक रहे।

जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग १३, किरण २, पृ० ११३ में प्रकाशित 'एक ऐतिहासिक पत्र' में अंकित सूचना के आधार पर श्री सकलकीर्ति विरचित **वीरवर्धमानचरितम्** के अपने सम्पादन-अनुवाद की प्रस्तावना में पं० हीरालाल जैन, सिद्धान्तशास्त्री, ने भट्टारक सकलकीर्ति का जीवनकाल वि० सं० १४३७ से १४९९ (ईस्वी सन् १३८० से १४४२) माना है। गुणराज रचित **सकलकीर्तिरास** से विदित होता है कि उनका जन्म स्थान अणहिल्लपुर

पट्टण (गुजरात) था। उनके पिता हुमड़ जातीय श्री करमसिंह शाह थे और माता का नाम शोभादेवी था। माता-पिता ने इनका नाम पूर्णसिंह रखा था जो श्री मूलसंघ के शृंगार पद्मनन्दी गुरु द्वारा दीक्षा के उपरान्त सकलकीर्ति हो गया। इन्होंने स्वयं अपनी कृतियों में अपना 'सकलकीर्ति' नाम विविध प्रकार से सूचित किया है, यथा- **वीरवर्धमानचरितम्** में 'सर्वकीर्तिगणि', **प्रश्नोत्तर श्रावकाचार** में 'समस्तकीर्ति मुनीश्वर', **पुराणसार संग्रह** में 'समस्तकीर्तियोगी' तथा **मूलाचार प्रदीप** में मात्र 'सकलकीर्ति'।

उपर्युक्त ४ रचनाओं के अतिरिक्त ४० अन्य कृतियों की रचना का श्रेय भी इन भट्टारक सकलकीर्ति को दिया जाता है। इनमें उल्लेखनीय **हैं—सिद्धान्तसार दीपक** (४५१६ श्लोक), **सार चतुर्विंशति** (२५२५ श्लोक), **आदिनाथ चरित** (४६२८ श्लोक), **शान्तिनाथ चरित** (४३७५ श्लोक), **पार्श्वनाथ चरित** (२८५० श्लोक) तथा **व्रतकथाकोश** (१६५७ श्लोक)।

संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी भाषाओं पर अधिकार रखने वाले तथा संस्कृत और हिन्दी में विपुल साहित्य सृजन करने वाले इन प्रकाण्ड विद्वान भट्टारक सकलकीर्ति द्वारा रचे गये श्लोकों का परिमाण पं० हीरालाल, सिद्धान्त शास्त्री, ने लगभग ७५,००० श्लोक आकलित किया है। सकलकीर्ति नाम के दो भट्टारक और भी हुए हैं जिनका समय क्रमशः १६५४-६३ ई० तथा १७५९ ई० है, परन्तु उनके साहित्यिक अभिदान का उल्लेख नहीं मिलता। कालक्रम और क्षेत्र की दृष्टि से यह सम्भव है कि हिन्दी की जो रचनायें प्रथम सकलकीर्ति की अनुमान की जाती हैं वे परवर्ती द्वितीय या तृतीय सकलकीर्ति की हों। इस बिन्दु पर गवेषणा अभीष्ट है। यह भी अभीप्सित है कि सकलकीर्ति के नाम से कही जाने वाली सभी रचनाओं का प्रकाशन यथाशीघ्र किया जाये ताकि उनका सम्यक् अनुशीलन और मूल्यांकन किया जा सके।

—रमा कान्त जैन

वृद्धों की समस्या

—डा० ज्योति प्रसाद जैन

[संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा १९८२ को 'वृद्ध वर्ष' घोषित किया गया था। इसका उद्देश्य वृद्धों के प्रति विश्व भर में युवा पीढ़ी में जो एक उपेक्षा का भाव पनपता जा रहा है, उसके प्रति ध्यान आकर्षित करना था। वृद्ध कौन है ? आजकल के परिप्रेक्ष्य में वय-वृद्ध, ज्ञान-वृद्ध, तप-वृद्ध आदि शब्द वृद्ध की उस अवस्था को सूचित नहीं करते जो उपेक्षा का हेतु है। सामान्य स्थिति में वृद्ध की वह अवस्था है जब व्यक्ति की उपयोगिता चुक जाये, उसकी उम्र कुछ भी हो सकती है। परिवार के लिये उपयोगिता न रहने पर, धन से भी निर्बल होने और शरीर से भी शिथिल होने पर, व्यक्ति का जीवन पुत्र-कलत्र के लिए एक बोझ (liability) बन सकता है। कोई सन्तान ऐसी भी कृतघ्न हो सकती है जो धन-सम्पत्ति का तो हरण कर ले और फिर तिरस्कार व उपेक्षा करके बेचारे का जीवन दूभर कर दे। इसीलिये शासन द्वारा भी और कुछ स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा भी 'वृद्ध आश्रम' (Old Age Homes) खोले गये हैं। यह स्थिति सर्वव्यापी है, global है जैसी कि अब पूरी अर्थ व्यवस्था ही होती जा रही है। हमारे देश में भी पिछले दो दशकों में ऐसे आश्रम स्थापित हुए हैं। उनके संवासियों के जो साक्षात्कार यदा-कदा प्रकाशित होते रहते हैं उससे उनकी दयनीय दशा और परिवारजनों द्वारा उपेक्षा के दर्दनाक परिदृश्य की कुछ अनुभूति होती है। यह संवेदना और सत्मूल्यों के 'वसुधैव ह्रास' का उदाहरण है जो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' पर तीक्ष्ण कटाक्ष है। इसकी ओर सावधान करने के लिये डाक्टर साहब ने 'वृद्ध वर्ष' में ४-८-१९८२ को वीर में जो विचार अभिव्यक्त किये थे, उन्हें यहां पुनः प्रकाशित किया जा रहा है क्योंकि वे आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं। **—शशि कान्त**]

अब से लगभग १५० वर्ष पूर्व लखनऊ के प्रसिद्ध मरसियागो शायर मीर बबर अली 'अनीस' ने लिखा था—

दुनिया भी अजीब सराये फ़ानी देखी ।
हर चीज़ यहाँ की आनी-जानी देखी ।।
जो आके न जाए, वो बुढ़ापा देखा ।
जो जाके न आए, वो जवानी देखी ।।

इस क्षण-भंगुर नश्वर संसार में कोई भी चीज स्थायी नहीं है । युवावस्था जाने के बाद फिर कभी वापस नहीं आती, किन्तु वृद्धावस्था या बुढ़ापा ऐसी चीज है जो एक बार आ गया तो फिर जाता नहीं, मृत्यु के साथ ही जाता है ।

व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परिकर्तयन्ती ।
रोगाश्चशत्रव: इव प्रहरन्ति गात्रे ।।
आयु: परिस्रवति भिन्नघटदिवांभो ।
लोको न चात्महितमाचरतीति कष्टम् ।।

बाघिन की भांति बुढ़ापा स्थायी होकर जीवन शक्तियों को कुतरता रहता है और शत्रुओं की भांति नाना रोग शरीर पर निरन्तर प्रहार करते रहते हैं । फूटे घड़े में से जिस प्रकार पानी रिस-रिस कर घटता है, आयु निरन्तर क्षीण होती जाती है । कितना अफसोस है कि लोग फिर भी आत्महित के लिए उपयुक्त आचरण नहीं करते ।

जान डेवे नामक एक पाश्चात्य चिन्तक लिखता है—

It is strange that the one thing that every person looks forward to, namely, old age, is the one thing for which no preparation is made.

कैसा आश्चर्य है कि वह चीज अर्थात् बुढ़ापा, जिसकी प्रत्येक व्यक्ति प्रतीक्षा करता है, जो प्रतिक्षण निकट से निकटतर आती दिखाई पड़ती है, वही ऐसी चीज भी है जिसके लिए कोई तैयारी नहीं की जाती ।

प्रत्येक व्यक्ति सामान्यतया शैशवावस्था से किशोरावस्था में होता हुआ युवावस्था को प्राप्त होता है और युवावस्था शनै:-शनै: प्रौढ़ता में से होती हुई वृद्धावस्था में लीन हो जाती है । प्राय: कह दिया जाता है कि बाल्यावस्था तो खेलने-खाने की

आयु है, युवावस्था संसार के भोगोपभोगों का आनन्द लेने की तथा गार्हस्थिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने की अवस्था है—धर्म करने के लिए इन दोनों अवस्थाओं में अवकाश कहां ? जब बुढ़ापा आयेगा तो यथेष्ट धर्म कर लेंगे । किन्तु वे भूल जाते हैं कि—

अंगं गलितं पलितं मुण्डं, दशनविहीनं जातं तुण्डम् ।
वृद्धोयाति गृहीत्वा दंडं, तदपि न मुञ्चति आशापिण्डम् ।।

बुढ़ापे में शरीर एवं इन्द्रियों की शक्ति तथा क्षमता उत्तरोत्तर क्षीण होती चली जाती हैं, तथापि आशा पिशाचिनी मनुष्य का पिंड नहीं छोड़ती ।

बुढ़ापे को सुधारने और सफल बनाने के लिए पहले से तैयारी करनी होती है । जब शरीर व्याधियों से ग्रस्त एवं जर्जरीं-भूत हो जाता है, यदि उस समय आशा-तृष्णा से पिण्ड भी छुड़ाने का प्रयत्न किया तो घर में आग लगने पर कुआं खोदने वाली उक्ति चरितार्थ होती है । वृद्धावस्था में यथोचित धर्माचरण भी पूर्वसंस्कारों एवं पूर्वाभ्यास के बिना दुष्कर ही होता है । तब तो मात्र पछतावा ही हाथ लगता है । कविवर भूधरदास के शब्दों में—

आया रे बुढ़ापा मानी, सुधिबुधि बिसरानी ।
श्रवण की शक्ति घटी, चाल चले अटपटी ।
देहलटी भूखघटी, लोचन झरत पानी ।। आया रे ।।
दांतन की पंक्ति टूटी, हाडन की संधि छूटि ।
काया की नगरी लूटी, जात नहीं पहिचानी ।। आया रे ।।
बालों ने वरण फेरा, रोग ने शरीर घेरा ।
पुत्रहु न आवे नेरा, औरों की कहा कहानी ।। आया रे ।।
'भूधर' समुझि अब, स्वहित करोगे कब ।
यह गति ह्वै है जब, पछितैहैं प्राणी ।। आया रे ।।

तो आत्महित करने के लिये, धर्म का सम्यक् आचरण करने के लिये बहुत समय पड़ा है, अभी क्या जल्दी है, यह एक भ्रांत धारणा है । जिनकी प्रवृत्ति पहले से ही धार्मिक होती है वे वृद्धावस्था से निपटने के लिये भी पहले से ही पूरी तैयारी के साथ तत्पर रहते हैं ।

प्रबुद्धजन यदि अपने कर्त्तव्यों के प्रति पहले से ही जागरूक रहते हैं, तो वे वृद्धावस्था के कारण परिवर्तित परिस्थितियों के साथ सामंजस्य स्थापित करने में भी समर्थ रहते हैं।

वृद्ध पुरुष और वृद्धा स्त्रियां भी मनुष्य समाज के अभिन्न अंग हैं। उनके कर्त्तव्य और दायित्व हैं तो शेष समाज के भी उनके प्रति कुछ कर्त्तव्य एवं दायित्व हैं। आज के इस भौतिक एवं भोग प्रधान युग में, जहां वृद्धों की संख्या भी बढ़ती जा रही है उनको लेकर उनकी स्वयं की तथा उनके परिजनों, समाज और राष्ट्र की अनेक गम्भीर समस्यायें भी उत्पन्न होती जा रही हैं। शायद इसीलिये संयुक्त राष्ट्र संघ (United Nations Organisation) ने जिस प्रकार गत वर्षों में एक वर्ष नारी-स्वातंत्र्य को, एक वर्ष शिशुकल्याण या बालकों की समस्याओं को और एक वर्ष विकलांग व्यक्तियों के हितार्थ, समर्पित किये थे, उसी प्रकार वर्ष १९८२ ई० को 'वृद्ध वर्ष' घोषित किया। उद्देश्य था कि वर्तमान युगीन विश्व के विभिन्न देशों के वृद्ध स्त्री-पुरुषों की उभरती हुई समस्याओं के प्रति विश्व मानव का ध्यान आकर्षित हो और यथा-सम्भव समाधान के प्रयत्न किये जायें।

जैन समाज भारतीय समाज एवं अखिल मानव समाज का एक अंग है। इस समाज में भी वृद्ध पुरुष और वृद्धा स्त्रियां हैं। उनकी भी अपनी समस्यायें हैं, जिनमें से अनेक तो अन्य समाजों के साथ साम्य रखती हैं, किन्तु कुछ-एक जैन संस्कृति तथा जैनों के सामाजिक गठन एवं रीति-रिवाजों के कारण कुछ अंशों में विशिष्ट भी हैं। इस वृद्ध समस्या के अनेक पहलू हैं और समाज के सामूहिक हित एवं प्रगति की दृष्टि से प्रबुद्धजनों को उन पर विचार करना आवश्यक है।

——

सम्पादकीय

जैन समाज को अल्पसंख्यक की मान्यता

करूणादीप दि० १ अगस्त, ९७, के अंक में निम्नलिखित समाचार प्रकाशित हुआ था—"**विश्व जैन संघ के सभापति श्री गजराज गंगवाल ने** उत्तर प्रदेश सरकार के अल्पसंख्यक कल्याण एवं वक्फ विभाग के मन्त्री बुनियाद हुसेन को **उत्तर प्रदेश में जैन समाज को अल्पसंख्यक स्तर प्रदान करने पर** हार्दिक बधाई दी है। पूर्व विधायक जय कुमार जैन महामंत्री ने बताया कि आजादी के बाद वर्षों से लम्बित **जैन समाज की जायज मांग को मन्त्री महोदय ने स्वीकार कर** देश हित में कार्य किया है। उत्तर प्रदेश सरकार के इस कदम से राज्य में शिक्षण संस्थाओं के विकास में गति प्रदान होगी और नैतिक शिक्षा के प्रसार में भी जैन संस्थाओं द्वारा उचित कदम उठाए जा सकेंगे।"

यह समाचार हुबहु दि० १४ अगस्त, ९७, के **जैन गजट में भी** प्रकाशित हुआ है। अत: या तो यह **जैन गजट** ने **करूणादीप** से उद्धृत किया है या फिर दोनों पत्रों का इस समाचार की प्राप्ति का स्रोत एक ही है। अब **जैन जनमत दर्पण** के सितम्बर ९७ के अंक में प्रकाशित निम्नांकित समाचार का अवलोकन करें—

"**उत्तर प्रदेश में जैनों को अल्पसंख्यक मान्यता प्राप्त—** दिल्ली : उत्तर प्रदेश सरकार ने जैनों को अल्पसंख्यक दर्जे की मान्यता दे दी है। **अ० भा० दिगम्बर जैन परिषद के अध्यक्ष साहु रमेशचन्द्र जैन ने इस निर्णय का स्वागत करते हुए** आशा व्यक्त की है कि केन्द्र सरकार भी शीघ्र ही जैनों को अल्पसंख्यक मान्यता प्रदान कर देगी। उन्होंने कहा कि अल्पसंख्यक आयोग में जैन प्रतिनिधि सदस्य के रूप में ले लिया गया है लेकिन अभी औपचारिक अधिसूचना जारी होनी है। वैसे अल्पसंख्यक आयोग यह सुझाव पेश कर चुका है कि जैनों को उनकी धार्मिक मान्यताओं, संस्कृति, आदि के आधार पर अल्पसंख्यक दर्जा प्रदान कर दिया जाये। उन्होंने दोहराया कि **अल्पसंख्यक दर्जा पाने का उद्देश्य इतना भर**

है कि जैन समाज अपनी शिक्षण संस्थाओं तथा धार्मिक न्यासों का प्रबन्ध स्वयं कर सके और सरकार की उसमें कोई दखलन्दाजी न हो। यह उल्लेखनीय है कि उत्तर प्रदेश सरकार में पहले जैनों को अल्पसंख्यक की मान्यता प्राप्त थी किन्तु कुछ वर्ष पहले जब अल्पसंख्यक आयोग की अधिसूचना जारी की गई तब उसमें पहले से उल्लिखित पांच जातियों—मुस्लिम, इसाई, सिख, पारसी और बौद्ध का ही उल्लेख किया गया। केन्द्र की इस अधिसूचना का राज्य स्तर पर धार्मिक अल्पसंख्यक की मान्यता से कोई सम्बन्ध नहीं था परन्तु भ्रान्ति वश उत्तर प्रदेश सरकार ने जैन शिक्षण संस्थाओं को अल्पसंख्यक स्तर पर मिलने वाली सभी सुविधाओं को बन्द कर दिया। **अब वर्तमान सरकार ने जैनों को अल्पसंख्यक का दर्जा देकर उनकी शिक्षण संस्थाओं के लिए पूर्व स्थिति बहाल कर दी है।"**

सर्वश्री गजराज गंगवाल, जय कुमार तथा साहु रमेश चन्द्र जी की तर्ज पर यदि जैन समाज के कुछ अन्य शीर्ष नेताओं ने भी उत्तर प्रदेश की सरकार को जैन समाज को अल्पसंख्यक की मान्यता प्रदान करने के लिये बधाई दे डाली हो तो कोई आश्चर्य नहीं। किन्तु **करूणादीप** व **जैन गजट** में प्रकाशित समाचार को देख कर जब हमने उत्तर प्रदेश सचिवालय के तत्सम्बन्धी विभाग के एक उच्च अधिकारी से सम्पर्क करके वस्तुस्थिति जाननी चाही तो यह पता चलने पर हम हतप्रभ रह गए कि **न तो जैन समाज को अल्पसंख्यक की मान्यता प्रदान करने के लिये कोई शासनादेश अभी तक जारी हुआ है और न ही ऐसा कोई प्रस्ताव शासन के विचाराधीन है।** इसकी पुष्टि भी **जैन गजट** के २२ अगस्त, ९७, में प्रकाशित निम्नलिखित समाचार से हो गई—

"**लखनऊ, २२ अगस्त**—महासभाध्यक्ष श्री निर्मल कुमार जी सेठी ने उत्तर प्रदेश के अल्पसंख्यक कल्याण एवं वक्फ़ विभाग के मंत्री श्री बुनियाद हुसेन से आज भेंट की तथा मन्त्री जी को उत्तर प्रदेश अल्पसंख्यक आयोग में जैन समाज को शामिल किये जाने हेतु अपने सुझाव दिये। इस पर मन्त्री महोदय ने बताया कि......मेरी यह

बात समाचार पत्रों में गलत छप गई है। **मेरे कहने का यह आशय था कि सिख, मुस्लिम, बौद्धों की तरह से जैन समाज भी अल्पसंख्यक के दायरे में आते हैं परन्तु अभी तक इस सम्बन्ध में अपना अन्तिम निर्णय नहीं लिया है।** महासभाध्यक्ष ने मन्त्री जी को जैन धर्म की सारी बातें बतलाई और……एक प्रतिवेदन भी दिया। ………मंत्री महोदय का कहना था कि आपकी **जैन समाज ने कोई विशेष प्रयास उत्तर प्रदेश में इस सम्बन्ध में नहीं किए हैं तथा शासन के पास जैन समाज की ……कोई पत्रावली भी……उपलब्ध नही है।** इस पर महासभाध्यक्ष ने बताया कि महासभा के द्वारा इस सम्बन्ध में अनेक प्रतिवेदन दिये गये हैं और आशा है कि शीघ्र ही और भी सब जगहों से उन्हें इस सम्बन्ध में पत्र मिलेंगे। उन्होंने यह भी बताया कि जैन धर्म एक स्वतन्त्र धर्म है और वह किसी धर्म की शाखा नहीं है।……चूँकि माइनारिटी ऐक्ट बना है, इसलिए हम अपना अस्तित्व ……अवश्य रखना चाहेंगे ताकि हमारे स्वरूप व धर्म की रक्षा हो सके। आज तो हमारा अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है। मन्त्री महोदय ने कहा कि……जैन समाज को भी न्याय मिलेगा परन्तु **जैन समाज को चाहिए कि वह अपनी भावनाएं मुख्य मन्त्री जी तक पहुंचाएं क्योंकि इस सम्बन्ध में निर्णय मुख्य मन्त्री को ही लेना है।**……"

करूणादीप, जैन गजट, जैन जनमत दर्पण प्रभृति समाचार पत्रों में प्रकाशित उत्तर प्रदेश में जैन समाज को अल्पसंख्यक समुदाय की मान्यता प्रदान किए जाने के नितान्त निराधार एवं भ्रामक समाचार का इन पत्रों के किसी आगामी अंक में खण्डन करके खेद प्रकाश किया गया हो, यह भी हमारे देखने में नहीं आया। महासभाध्यक्ष भी मन्त्री जी से भेंट करने उत्तर प्रदेश अल्पसंख्यक आयोग में जैन समाज के प्रतिनिधि को सम्मिलित किये जाने हेतु अपने सुझाव देने ही गए थे। यह तो उन्हें भेंट में ही मन्त्री जी से मालूम हुआ कि अभी तो इस सम्बन्ध में कोई प्रस्ताव ही शासन के विचाराधीन नहीं है। और भी उपहासास्पद यह है कि **ब्राह्मी देशना** (मासिक) ने अपने अक्टूबर ९७ के अंक में **जैन जनमत दर्पण** के

सितम्बर के अंक में प्रकाशित समाचार को हुबहु प्रकाशित कर दिया।

तो **ऐसी है हमारी जैन पत्रकारिता और उसकी ऐसे संवेदनशील एवं महत्त्वपूर्ण विषय पर प्रकाशित** समाचार की विश्वसनीयता !

अब ज़रा **राष्ट्रीय सहारा** (दैनिक) के २६ सितम्बर, ९७, के सम्पादकीय लेख के निम्नलिखित अंशों पर गौर फरमाएं—

''**जैन समाज का निर्णय**—भारत में अल्पसंख्यक होने का मतलब कुछ-कुछ राजनैतिक व अन्य सुविधाओं का हकदार होना है और यही कारण है कि कई समुदाय अपने को अल्पसंख्यकों की श्रेणी में रखे जाने के लिये आवाज़ बुलन्द करते रहते हैं।......दरअसल **अल्पसंख्यक समुदाय की अवधारणा पूर्ण रूप से अभारतीय है** क्योंकि जातिबद्ध समाज में हर समुदाय अन्ततः अल्पसंख्यक ही रहता है। भारतीय समाज सिर्फ जातिबद्ध ही नहीं है बल्कि हर जाति की उपजातियां भी होती हैं। ऐसे में अगर समाज का बटवारा किया जाय तो देश में सिर्फ अल्पसंख्यक ही होंगे और हर अल्पसंख्यक समूह दूसरे अल्पसंख्यक के विरुद्ध खड़ा मिलेगा। कल्पना करना कठिन नहीं है कि इस प्रवृत्ति का चरमोत्कर्ष भारत के अस्तित्व के लिये भी खतरनाक बन जाएगा। ऐसे में **जैन समाज ने अपने को अल्पसंख्यकों की सूची में शामिल किये जाने से इन्कार कर दिया है।**......पिछले दिनों **अहमदाबाद में जैन आचार्यों एवं मुनिश्री के सम्मेलन में जैन** समाज को अल्पसंख्यकों की सूची में शामिल किये जाने के मामले पर **गम्भीर बहस हुई थी** और तीन दिन के विचार चिन्तन के बाद **फैसला किया गया कि जैन समाज अल्पसंख्यक सूची में शामिल नही होना चाहता है।** सम्मेलन की यह टिप्पणी सचमुच काबिले तारीफ है कि जैन समाज देश के गैर-**जैन हिन्दू समाज के साथ बेहद आत्मीय व समरसता के साथ रह रहा है।** इससे भी बड़ी और **महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने अपने को हिन्दू हीं माना।** ऐतिहासिक दृष्टि से भी बौद्ध या जैन हिन्दू समाज के ही अंग रहे हैं। हिन्दू समाज की बृहत्तर सहिष्णुता अपने में अनेक शाखाएं होने एवं उन्हें पल्लवित एवं पुष्पित होने की गुंजाइश भी रखती है। अब

यदि शाखायें स्वतन्त्र वृक्ष बन जाती हैं तो इसका मतलब यह नहीं है कि उसकी जड़ें भी अलग हैं।.........हिन्दू धर्म में भी अनेक मत और सम्प्रदाय होने का मतलब यह नहीं है कि वे सभी एक दूसरे से अलग हैं और हिन्दू समाज के अंग नहीं हैं। भारतीय वाङ्मय में बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक समुदाय में बांट कर समाज की कल्पना नहीं की गई है। यह मुख्य रूप से पश्चिमी अवधारणा है।......... भारत में पहली बार अंग्रेजों ने ही 'कम्यूनल एवार्ड' देने और अल्पसंख्यकों के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र की वकालत की।......... दुखद आश्चर्य होता है कि आजादी के बाद हमारे नेताओं ने अल्प-संख्यकों के तुष्टिकरण की नीति अपनायी।.........आज भी हमारे नीति निर्धारक उसी नीति पर चल रहे हैं। अल्पसंख्यक भावना का शिकार होकर भारत एक बार विभाजित हो चुका है।......... यह भावना मुख्य रूप से राष्ट्र की मुख्य धारा के प्रतिकूल होती है और इसमें अलगाववादी प्रवृत्ति के पनपने की भी काफी सम्भावना होती है।.........जैन समाज के उक्त निर्णय से भारतीय समाज को मजबूती मिलेगी।.........''

हमें उपरोक्त सम्पादकीय लेख से यह जानकारी प्राप्त कर कि जैन समाज ने गम्भीर बहस और विचार चिन्तन के बाद फैसला किया है कि वह अल्पसंख्यकों की सूची में शामिल नहीं होना चाहता, बड़ा विस्मय हुआ क्योंकि ऐसे किसी फैसले का समाचार किसी जैन पत्र-पत्रिका में पढ़ने में नहीं आया। यह तो सर्व विदित है कि चातुर्मास में जैन साधु एक ही स्थान पर स्थिरावास करते हैं तथा उनका एक स्थान से दूसरे स्थान को विहार करना पूर्णतया निषिद्ध होता है। अतः अहमदाबाद में हुए तथाकथित सम्मेलन में मात्र उस नगर में चातुर्मासरत साधु-साध्वियों ने ही भाग लिया होगा, उसमें भी किसी दिगम्बर जैन साधु-साध्वी के ऐसे किसी सम्मेलन में भाग लिये होने की सम्भावनायें अत्यल्प हैं क्योंकि अब तक जितने भी दिगम्बर जैन आचार्य, मुनि या आर्यिकाओं ने इस विषय पर विचार व्यक्त किये हैं वह धार्मिक अल्पसंख्यक मान्यता के समर्थन में ही

किये हैं। इसके अतिरिक्त, दिगम्बर जैन समाज का प्रतिनिधित्व करने वाली तीनों अखिल भारतीय संस्थाओं—दि० जैन महासमिति, श्री भा० दि० जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा तथा अ० भा० दिगम्बर जैन परिषद—के शीर्ष नेतागण सार्वजनिक रूप से जैन समाज को धार्मिक अल्पसंख्यक की मान्यता प्रदान किए जाने की मांग करते रहे हैं।

वस्तुत: जब से राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग में केन्द्र सरकार ने एक जैन सदस्य की नियुक्ति की तथा आयोग के अध्यक्ष डा० ताहिर महमूद ने लखनऊ में दि० ७ जनवरी, ९७, को एक समारोह में यह बताया कि आयोग ने जैन समुदाय को अल्पसंख्यक वर्ग में शामिल किये जाने के लिये केन्द्र सरकार को संस्तुति भेज दी है, हिन्दू समाज के कतिपय कट्टर पंथियों में एक अजीब सी खलबली मच गई है तथा उनका हर सम्भव प्रयास हो रहा है कि केन्द्र सरकार को इस संस्तुति को अस्वीकार करने के लिये प्रेरित किया जाय तथा जैन समाज को भी समझाया, फुसलाया, धमकाया जाय कि अल्पसंख्यक वर्ग में शामिल किए जाने से खुद इन्कार कर दे, अन्यथा इसके दूरगामी दुष्प्रभाव होंगे। विश्व हिन्दू परिषद के कतिपय शीर्ष नेताओं ने तो इस प्रस्ताव का विरोध सार्वजनिक रूप से दर्ज भी कर दिया है। **राष्ट्रीय सहारा** (दि० १७-२-९७) में प्रकाशित बाल कवि वैरागी के लेख '**जैन समुदाय विवाद के घेरे में**'' के निम्नलिखित अंश भी इस प्रसंग में दृष्टव्य हैं·········

''अल्पसंख्यक आयोग के एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष ने एक नई बहस को जन्म दे दिया है·····कि बकौल अल्पसंख्यक आयोग 'क्या जैन समुदाय भारत में एक अल्पसंख्यक समुदाय माना जाय और आयोग के द्वारा घोषित-पोषित प्रावधानों का वह प्रयोग या कि उपयोग करे या नहीं।'·····जैन आज भी एक जाति न होकर एक धर्म है और धर्म किसी व्यक्ति विशेष की बपौती नहीं होता।····· **भारत में जैन एक बहुत ही महत्वपूर्ण धर्म है** और इसकी मान्यता के आधार पर जीवन जीने वाले करोड़ों लोग सारे भारत में यहां से

वहां तक फैले-पसरे अपना कामकाज शालीनता के साथ कर रहे हैं।.........बहस का मुद्दा आज यह बन गया है कि **'क्या जैन** समाज अल्पसंख्यक है **या अल्पसंख्यक आयोग के निष्कर्ष के कारण** अल्पसंख्यक हो गया है।'... ...मैं बहस का हिस्सेदार भी नहीं हूँ लेकिन **आप की हाँ या ना दोनों से भारत के जैनेतर समुदाय पर भी असर पड़ने वाला है** और मैं 'जैनेतर समाज का हिस्सा हूँ, एक इकाई हूँ।'....... **केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल** (आयोग के) इस निष्कर्ष को स्वीकार या **अस्वीकार करने के लिये स्वतन्त्र है**।......केन्द्रीय **सरकार** सीधे ही इस रिपोर्ट को......संसद में पेश करके इस पर **देश की खुली बहस मांग ले .... मामला बिलकुल मण्डल कमीशन की रिपोर्ट जैसा उलझ गया है**। .....(जो) दसियों बरस तक केन्द्रीय सरकार के पास बिना किसी निर्णय के पड़ी थी।......देश में जो भी क्रिया या प्रतिक्रया हुई वह उसके लागू होने के बाद ही हुई थी। जैन समुदाय को लेकर आयोग का यह निष्कर्ष भी कमोबेश वैसा ही प्रभाव डालेगा। जैन समुदाय अहिंसा में आस्था रखने वाला समुदाय है इसलिये राष्ट्रीय हिंसा या क्षति की सम्भावनायें क्षीण हैं। तब भी **जैनेतर समाज के दैनिक जीवन पर इसका असर अवश्य ही पड़ेगा**।......एक और गम्भीर आशंका भी हो रही है कि किसी न किसी बहाने **इस निष्कर्ष को उच्चतम न्यायालय के दायरे में दाखिल कराकर सयाने लोग खूंटी तान कर सो जायें** तब फिर मामला बरसों तक कुंठा के कुहरे में डूब सकता है।.........इस निष्कर्ष तक पहुंचने में आयोग को जिस बात ने सबसे बड़ा आधार दिया वह है जनगणना के समय अपने आपको 'जैन लिखना या जैन लिखवाना'।......लेकिन **जनगणना में अपने आपको 'जैन' लिखकर प्रविष्टि कराने वाले परिवार तक एक राष्ट्रीय संकोच और धर्म संकट में फंस गए हैं। वे आगे बढ़कर कह रहे हैं कि हम हिन्दू हैं और हमें अल्पसंख्यक नहीं माना जाना चाहिये**।...... अभी भी (जैन) समुदाय के सभी लोग किसी न किसी स्तर पर एक साथ मिल बैठें और इस बिन्दु को आयोग, सरकार, संसद,

संविधान और सर्वोपरि सर्वोच्च न्यायालय की परिधि से निकाल कर अपने दायरे में ले लें और अपना सर्व सम्मत निष्कर्ष आयोग के सामने रख दें ।........"

श्री वैरागी एक वयोवृद्ध प्रबुद्ध साहित्यकार तथा पूर्व सांसद हैं किन्तु अपने इस लेख में उन्होंने अपनी राजनीतिक चतुराई से विषय को जिस प्रकार तोड़-मरोड़ कर के प्रस्तुत किया, है, वह उनकी साम्प्रदायिक जैन-धर्म-विरोधी विकृत मानसिकता का ही परिचायक है । हम उन्हें, **राष्ट्रीय सहारा** के सम्पादक जी तथा उनकी जैसी मानसिकता वाले महानुभावों को बताना चाहते हैं कि अब यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो चुका है कि जैन धर्म, दर्शन एवं संस्कृति इस देश में जन्मी और विकसित ऐसी मौलिक विचारधारा पर आधारित है जिसकी जड़ें सभ्यता की प्रथम किरण के अवतरण के युग तक जाती हैं । यह वैदिक धर्म की जो हिन्दू धर्म रूपी वट वृक्ष के रूप में विकसित हुआ, कोई शाखा नहीं है जो कालान्तर में एक स्वतन्त्र वृक्ष के रूप में विकसित हुआ हो । जैन धर्म का दर्शन, उपास्य देव तथा धर्मायतन हिन्दू धर्म से भिन्न एवं पृथक हैं । जहां तक सामाजिक व्यवस्था का प्रश्न है, जैन धर्मावलम्बी बृहत्तर हिन्दू समाज के अंग हैं और सदा ही बने रहेंगे । जाति सामाजिक व्यवस्था है और धर्म का सामाजिक व्यवस्था से कोई लेना-देना नहीं होता । कोई भी व्यक्ति किसी भी जाति, वर्ण या समाज का हो, जिसे जैन धर्म के सिद्धान्त तथा उसके द्वारा उपदिष्ट अहिंसामय जीवन शैली स्वीकार्य हो, उनमें आस्था हो, वह अपने को जैन कहने व लिखने का अधिकारी है । आज विदेशों में भारतीय मूल के निवासियों के अतिरिक्त अनेक व्यक्ति हैं जिन्होंने अपने समाज में सम्मान पूर्वक रहते हुए जैन धर्म के सिद्धान्तों एवं अहिंसामय करुणामय जीवन शैली से प्रभावित होकर जैन धर्म स्वीकार कर लिया है ।

भारत के संविधान में आर्थिक सामाजिक रूप से दलित व पिछड़े समुदायों को ऊपर उठाने के उद्देश्य से भले ही आरक्षण आदि के लिये विशेष प्राविधान हो, पर जहाँ तक हमारा अल्प अध्ययन है

धार्मिक अल्पसंख्यकों को राजनीतिक क्षेत्र में (संसद, विधान सभा, स्थानीय निकायों में), प्रशासनिक क्षेत्र में (राजकीय सेवाओं आदि में) या शिक्षण संस्थाओं में आरक्षण आदि के रूप में कोई विशेष सुविधा दिये जाने का कोई प्राविधान नहीं है। अल्पसंख्यकों के लिये प्राविधान संविधान की धारा ३० में निहित है तथा इसके अनुसार धार्मिक अल्पसंख्यक समुदाय की मान्यता प्राप्त होने पर मात्र इतना भर अधिकार प्राप्त हो जाएगा कि वह अपनी शिक्षण संस्थाओं तथा धार्मिक न्यासों का प्रबन्ध स्वयं कर सकें और सरकार की उसमें कोई दखलन्दाजी न हो। इसमें जैनेतर समाज पर जिसकी श्री बैरागी एक इकाई हैं, क्या और क्यों प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा, या इससे जैनेतर बृहत्तर हिन्दू समाज से अलगाव की प्रवृत्ति को क्यों बढ़ावा मिलेगा, यह हमारी समझ के बाहर है। श्री वैरागी तो यह भी नहीं मानते कि जैन अल्पसंख्यक हैं। उनके अनुसार तो अल्पसंख्यक आयोग द्वारा उन्हें अल्पसंख्यक समझे जाने के कारण ही उन्हें अल्पसंख्यक माना जा रहा है। अब इस मानसिकता को क्या कहा जाए जबकि जनगणना के अनुसार पारसियों के बाद जैन ही संख्या में सब धार्मिक अल्पसंख्यकों में सबसे नीचे हैं। उन्हें इस पर भी ऐतराज है कि जैन जनगणना में धर्म के कालम में अपने को जैन लिखाते हैं तथा ऐसा करने से जैनी एक राष्ट्रीय संकोच व धर्म संकट में फंस गये हैं। हमारा श्री वैरागी जैसे जैन धर्म के शुभ-चिन्तकों (?) से आदरपूर्वक निवेदन है कि वे जैनों के विषय में चिन्ता करना, उनके विषय में अनर्गल कल्पना करना तथा उन्हें सत् परामर्श (?) देने का कष्ट उठाना छोड़ दें। जनगणना में 'धर्म' के कालम में अपने को जैन लिखाना वे अपने धर्म व संस्कृति की अलग पहचान बनाये रखने के लिए आवश्यक समझते हैं तथा अपने को जैन कहलाने का उन्हें गर्व है।

जहां तक बृहत्तर हिन्दू समाज की धार्मिक सहिष्णुता वाली छवि की बात है तो यदि दक्षिण भारत में मदुरई के मीनाक्षी देवी

(शेष पृष्ठ २५७ पर)

आवश्यकों की प्राचीन परम्परा

—डा० ऋषभचन्द्र जैन "फौजदार"

जैन परम्परा में श्रमण के अट्ठाईस मूलगुण बताये गये हैं। श्रमण के लिये उनका निर्दोष आचरण करना अनिवार्य है। मूलगुणों में षडावश्यक भी सम्मिलित हैं, जिनके द्वारा श्रमण अपनी आत्मा में लीन होने का प्रयत्न करता है। षडावश्यक श्रमण की दैनिक क्रियायें हैं। आचार्य कुन्दकुन्द के **नियमसार** में आवश्यकों की प्राचीन परम्परा सुरक्षित है। बाद में उसे संशोधित किया गया, किन्तु उसमें प्राचीन परम्परा की उपेक्षा नहीं की गई। इस लेख में प्राचीन परम्परा के अनुसार आवश्यकों के नाम व क्रम रखकर विचार किया जा रहा है।

आवश्यक का स्वरूप

आवश्यक को परिभाषित करते हुए आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है कि जो अन्य के वश नहीं होता है, उसके कार्य को आवश्यक कहते हैं। यह कर्म विनाशक और निवृत्ति का मार्ग है। यह आवश्यक की निरूक्ति है। जो अन्य के वश नहीं है, वह अवश है, उस अवश का कार्य आवश्यक जानना चाहिए।[1] आवश्यक का यही स्वरूप **मूलाचार** में भी कहा गया है। वहाँ की मूलगाथा भी शब्दश: **नियमसार** के अनुरूप है।[2] पं० आशाधर कहते हैं कि जो इन्द्रियों के वश नहीं होता, उसे अवश कहते हैं। ऐसे मुनि के दिन और रात में करने योग्य धर्मों का नाम ही आवश्यक है।[3] जो श्रमण अशुभ भाव, शुभ भाव और द्रव्य-गुण-पर्याय में चित्त को लगाता है, वह अन्यवश श्रमण है, उसके आवश्यक कार्य नहीं होता। जो श्रमण परभाव को छोड़कर निर्मल स्वभावी आत्मा का ध्यान करता है, वह आत्मवश होता है, उसी के आवश्यक कार्य होता है। और भी कहा गया है कि यदि आवश्यक करना चाहते हो तो आत्म-स्वभाव में अपने भावों को स्थिर करो, उससे जीव का श्रामण्य गुण पूर्ण होता है।[4] सभी पुराण-पुरुष आवश्यक कार्य करते हुए अप्रमत्त आदि स्थानों को प्राप्त करके केवली हुए हैं।[5]

आवश्यक के भेद

आचार्य **कुन्दकुन्द ने नियमसार** में आवश्यकों का विस्तार से विवेचन किया है । वहाँ प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना, प्रायश्चित, परम समाधि और भक्ति का व्याख्यान किया गया है । इनका क्रम भी यही रखा गया है । **मूलाचार, आवश्यक सूत्र** आदि ग्रन्थों में सामायिक, चतुर्विशति स्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग–ये छह आवश्यक बताये गये हैं, उनका क्रम भी यही है ।

प्रतिक्रमण

आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं कि जो वचन रचना को छोड़कर और रागादि भावों का निवारण करके अपनी आत्मा का ध्यान करता है, उसके प्रतिक्रमण होता है । जो विराधना को छोड़कर आराधना में प्रवर्तता है, अनाचार को छोड़कर आचार में अपने भावों को स्थिर करता है, उन्मार्ग को त्याग कर जिनमार्ग में स्थिर होता है, शल्य भाव को छोड़कर निःशल्य में परिणमन करता है, अगुप्तिभाव को छोड़कर त्रिगुप्तिगुप्त होता है, वह प्रतिक्रमण मय होने से प्रतिक्रमण है । जो आर्त-रौद्र ध्यान को छोड़कर धर्म और शुक्ल-ध्यान में ध्यान लगाता है, उसके प्रतिक्रमण कहा गया है । और अन्त में आत्मा के ध्यान को ही उत्तम प्रतिक्रमण बताया गया है ।[6]

मूलाचार में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव में किये गये अपराध का मन, वचन और काय से शोधन करना प्रतिक्रमण कहा गया है ।[7] **धवला टीका** में गुरू के सामने आलोचना किये बिना संवेग और निर्वेद से युक्त साधु का "फिर कभी ऐसा न करूंगा", यह कहकर अपने अपराध से निवृत्त होना प्रतिक्रमण बताया गया है ।[8] **तत्त्वार्थ-वार्तिक** में "अतीतदोषनिर्वतनं प्रतिक्रमणम्", अर्थात्, अतीत के दोषों के निराकरण को प्रतिक्रमण कहा है ।[9] **गोम्मटसार जीवकाण्ड** की **टीका** के अनुसार प्रमाद के द्वारा किये गये दोषों का निराकरण करना प्रतिक्रमण है ।[10] पूर्व में किये गये दोषों का निराकरण करना तथा अपनी आत्मा का ध्यान करना, प्रतिक्रमण है ।

मूलाचार में प्रतिक्रमण के सात भेद कहे गये हैं—दैवसिक, रात्रिक, ऐर्यापथिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक और उत्तमार्थ ।[11] **कसायपाहुड़** की **जयधवला टीका** और **गोम्मटसार जीवकाण्ड** की **जीवतत्त्व प्रदीपिका टीका** में भी प्रतिक्रमण के यही भेद कहे गये हैं ।

प्रत्याख्यान

नियमसार में आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं कि जो समस्त जल्पों को छोड़कर अनागत शुभ-अशुभ का निवारण करके अपनी आत्मा का ध्यान करता हैं उसके प्रत्याख्यान होता है । ज्ञानी जीव ऐसा चिन्तन करे कि वह केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलशक्ति और सुखमय है । आत्मा बन्ध रहित है, ऐसा विचार करते हुए स्वयं में लीन रहे । एक मात्र आत्मा का ही चिन्तन करे । उसी में ज्ञान, दर्शन, चारित्र, प्रत्याख्यान, संवर, योग का अनुभव करे । ऐसा विचार करने वाला कषाय रहित, दान्त, शूर, उद्यमी, और संसार से भयभीत श्रमण शुभ रूप प्रत्याख्यान का धारक होता है ।[12] **समयसार** में भविष्यत् कालीन शुभ-अशुभ का बन्ध करने वाले भाव का त्याग करना प्रत्याख्यान कहा गया है ।[13]

मूलाचार के अनुसार नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन छहों में शुभ मन, वचन तथा काय से आगामी काल के लिए अयोग्य का त्याग करना, प्रत्याख्यान है ।[14] **तत्त्वार्थ-वार्तिक कार** ने भविष्यत् काल में दोष नहीं हों, इसके लिए दृढ़ होना, प्रत्याख्यान बताया है ।[15] दिन में भोजन करके योग्यकाल पर्यन्त अन्न, पान, खाद्य, और लेह्य इन चार प्रकार के आहारों में रूचि का त्याग करना व्यवहार नय का प्रत्याख्यान है ।[16]

मूलाचार में प्रत्याख्यान के निम्नलिखित दश भेद बताये गये हैं—अनागत, अतिक्रान्त, कोटीसहित, निखण्डित, साकार, अनाकार, परिणामगत, अपरिशेष, अध्वगत और सहेतुक । पुनः, विनयकर, अनुभाषाकर, अनुपालनकर और परिणामकर ये चार प्रकार भी कहे गये हैं ।[17] **भगवती आराधना की टीका** में नाम,

स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव रूप छह प्रकार का प्रत्याख्यान कहा गया है। यहाँ मन, वचन और काय रूप त्रिविध प्रत्याख्यान का भी कथन है।[18] **अनगार धर्मामृत** में भी उक्त छह भेद ही बताये गये हैं।

आलोचना

नियमसार में कर्म तथा नोकर्म से रहित और विभाव गुणों तथा विभाव पर्यायों से भिन्न आत्मा का ध्यान, आलोचना कहा गया है।[19] वर्तमान में अनेक विस्तार वाला जो शुभ और अशुभ कर्म उदय में आया है, उस दोष को जो अनुभव करता है, वह आलोचना स्वरूप है।[20] **भगवती आराधना की टीका** में अपने दोषों को छिपाने का प्रयत्न न करके उनका त्याग करना, आलोचना कहा गया है।[21] **सर्वार्थसिद्धि, तत्वार्थसार, अनगार धर्मामृत** आदि ग्रन्थों में इन दोषों से रहित होकर अपने प्रमाद का गुरू के सामने निवेदन करना आलोचना कहा गया है। आकंपित, अनुमानित, यद्‌दृष्ट, बादर, सूक्ष्म, प्रच्छन्न, शब्दाकुलित, बहुजन, अव्यक्त और तत्सेवी—ये दस आलोचना के दोष हैं।[22]

आचार्य कुन्दकुन्द ने आलोचना के चार भेद बताये हैं—आलोचन, आलुच्छन, अविकृतिकरण और भावशुद्धि। अपने परिणाम को समभाव में स्थापित कर आत्मा को देखना आलोचन है। कर्मरूपी वृक्ष को जड़ से नष्ट करने में समर्थ, समभावरूप, स्वाधीन, अपनी आत्मा का परिणाम आलुच्छन कहा गया है। मध्यस्थ होकर कर्म से भिन्न आत्मा की भावना करना अविकृतिकरण कहलाता है। मद, मान, माया और लोभ रहित अपना भाव ही भावशुद्धि है।[23] **मूलाचार** में आलोचना के दैवसिक, रात्रिक, ऐर्यापथिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक और उत्तमार्थ—ये सात भेद प्राप्त होते हैं।[24] **भगवती आराधना** में ओघ और पदविभागी, ये दो भेद बताये गये हैं।[25]

प्रायश्चित

साधक के आचरण में लगने वाले दोषों का निराकरण करके अन्तरंग से उनका शोधन करने के निमित्त पश्चाताप स्वरूप उपवा-

सादि तप ग्रहण करना प्रायश्चित कहलाता है। **नियमसार** में व्रत, समिति, शील, संयम का परिणाम तथा करण-निग्रह का भाव प्रायश्चित कहा गया है। अनेक कर्मों के क्षय का कारण महर्षियों का ज्ञान, ध्यान और तप में संलग्न रहना भी प्रायश्चित है।[26] **मूलाचार** तथा **धवला** में भी तप को प्रायश्चित कहा गया है।[27] कुमार कार्तिकेय के अनुसार विकथाओं से विरक्त होकर ज्ञान स्वरूप आत्मा का बार-बार चिन्तन करना प्रायश्चित है। जो मन, वचन और काय से स्वयं दोष नहीं करता, दूसरे से नहीं करवाता तथा अन्य करने वाले को उचित नहीं कहता, उसके उत्कृष्ट विशुद्धि होती है।[28] यह उत्कृष्ट विशुद्धि भी प्रायश्चित है। मन को शुद्ध करने की क्रिया को भी प्रायश्चित कहा गया है।[29]

आचार्य कुन्दकुन्द ने स्पष्ट रूप से प्रायश्चित के भेद नहीं किये किन्तु उनके कथन में निश्चय और व्यवहार नय रूप दो भेद दिखलाई पड़ते हैं। **मूलाचार** में आलोचना, प्रतिक्रमण, तदुभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, मूल, परिहार और श्रद्धान—ये दश भेद हैं।[30] **धवला टीका**, **अनगार धर्मामृत**, **चारित्रसार** आदि ग्रन्थों में भी उक्त दश भेद प्राप्त होते हैं। **अनगार धर्मामृत** में व्यवहार नय से दश भेद तथा निश्चय नय से असंख्येय लोकप्रमाण भेद बताये गये हैं।[31] **तत्वार्थसूत्र** कार ने आलोचना, प्रतिक्रमण, तदुभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, परिहार्य और उपस्थापना—ये नौ भेद कहे हैं।[32]

नियमसार में प्रायश्चित्त के साथ ही कायोत्सर्ग का स्वरूप बतलाते हुए कहा गया है कि जो कायादि परद्रव्यों से अपने भावों को हटाकर निर्विकल्पक रूप से आत्मा का ध्यान करता है, उसके कायोत्सर्ग होता है।[33] **नियमसार की टीका** में भी उल्लेख है— ''सर्वेषां जनानां कायेषु वह्वय: क्रिया विद्यन्ते, तासां निवृत्तिः कायोत्सर्ग', [34] अर्थात्, सब लोगों की शरीर सम्बन्धी बहुत क्रियायें होती हैं, उन क्रियाओं की निवृत्ति कायोत्सर्ग है। **मूलाचार**, **तत्वार्थवार्तिक**, **चारित्रसार** आदि ग्रन्थों में परिमित काल के लिए शरीर से ममत्व का त्याग करना कायोत्सर्ग कहा गया है। **मूलाचार**, **भगवती**

आराधना, **अनगार धर्मामृत** आदि में कायोत्सर्ग के चार भेद किये गये हैं—उत्थितोत्थित, उत्थितनिविष्ट, उपविष्टोत्थित और उपविष्ट निविष्ट ।[35]

परम समाधि

कुन्दकुन्द कहते हैं कि जो वचनोच्चारण की क्रिया को छोड़ कर वीतराग भाव से संयम, तप, धर्म और शुक्ल ध्यान पूर्वक आत्मा का ध्यान करता है उसके परम समाधि होती है । सर्वसावद्य विरत, त्रिगुप्त, समस्त इन्द्रिय व्यापार से विमुख, सभी प्राणियों में समता-भाव रखने वाला, संयम, नियम एवं तप में संलग्न, राग-द्वेष रहित, आर्त-रौद्र ध्यान रहित, पुण्य-पाप रहित, हास्य, रति, अरति, शोक, जुगुप्सा, भय और वेद रहित होकर जो नित्य धर्म और शुक्ल ध्यान को ध्याता है, केवली शासन में उसके स्थायी सामायिक कही गई है । समता से रहित श्रमण के वनवास, कायक्लेश, उपवास, अध्ययन, मौन आदि सब व्यर्थ हैं ।[36] **नियमसार** की सामायिक से सम्बन्धित छह गाथायें **मूलाचार** में यथावत् रूप में पायी जाती हैं । इसके अतिरिक्त वहाँ राग-द्वेष रहित होकर शत्रु-मित्र, मानापमान आदि में समता का आचरण करना सामायिक कहा गया है ।[37] **धवला, चारित्रसार** और **अमितगति श्रावकाचार** में भी समता को सामायिक बताया गया है ।[38] **योगसार** सभी द्रव्यों में राग-द्वेष का अभाव तथा आत्मस्वरूप में लीनता को सामायिक कहता है ।[39] **तत्वार्थवार्तिक** कार ने सर्वसावद्ययोग से निवृत्ति तथा एक ज्ञान के द्वारा चित्त की निश्चलता को सामायिक बताया है ।[40] **कसायपाहुड में** कहा गया है कि तीनों ही सन्ध्याओं में या पक्ष और मास के सन्धि दिनों में या अपने इच्छित समय में बाह्य तथा अन्तरंग समस्त पदार्थों में कषाय का निरोध करना सामायिक है ।[41] यहाँ यह कहा जा सकता है कि राग-द्वेष का अभाव और समता का भाव सामायिक है ।

कसायपाहुड में सामायिक के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव चार भेद तथा **भगवती आराधना की टीका** में नाम, स्थापना, द्रव्य

और भाव चार भेद बताये गये हैं ।[42] **मूलाचार, अनगार धर्मामृत** और **गोम्मटसार जीवकाण्ड की जीव-प्रदीपिका टीका** में नाम, स्थापना द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव ये छह भेद कहे गये हैं ।[43]

भक्ति

"भजनं भक्तिः" के अनुसार अपने इष्ट देव का भजन करना भक्ति कहलाता है । **नियमसार** में मोक्ष गये हुए पुरुषों के गुण और भेद को जानकर उनमें परम भक्ति करने को व्यवहार नय से भक्ति कहा गया है । जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की भक्ति करता है, उसके निवृत्ति भक्ति होती है । मोक्षमार्ग में स्वयं को स्थापित करके निवृत्ति भक्ति करने से जीव अपने असहाय गुण को प्राप्त करता है । यहाँ निवृत्ति भक्ति के सन्दर्भ में श्रमण के साथ श्रावक का भी उल्लेख हुआ है ।

विपरीत अभिप्राय को छोड़कर जिनेन्द्र द्वारा कथित तत्त्वों में जो अपने आपको लगाता है उसका वह निजभाव ही योग कहा गया है जो रागादि के परिहार में और सभी विकल्पों के अभाव में स्वयं को लगाता है वह योगभक्ति से युक्त होता है । ऋषभादि जिनेन्द्रों ने योगभक्ति करके मोक्ष पाया है । इसलिए योगभक्ति करना चाहिए ।[44]

पूज्यपाद ने भावों की विशुद्धि के साथ अरहन्त, आचार्य, श्रुत और प्रवचन में अनुराग रखने को भक्ति कहा है ।[45] **तत्वार्थवार्तिक, धवला, चारित्रसार,** और **भावपाहुड की टीका**, में भी यही बताया गया है ।

मूलाचार में कहा गया गया है कि ऋषभादि चौबीस तीर्थंकरों के नाम एवं गुणों की मन, वचन तथा काय से स्तुति करना, चतुर्विंशति स्तव है । **तत्वार्थवार्तिक, अनगार धर्मामृत, चारित्रसार** आदि ग्रन्थों में भी चतुर्विंशति स्तव का यही स्वरूप प्राप्त होता है ।[46] **भगवती आराधना की टीका** में मन से चौबीस तीर्थंकरों के गुणों का स्मरण करना, वचन से तीर्थंकर भक्ति के पद्य बोलना तथा हाथ जोड़कर मस्तक पर लगाते हुए उन्हें नमस्कार करना रूप

चतुर्विंशति स्तव तीन प्रकार का बताया गया है ।[47] **मूलाचार** और **अनगार धर्मामृत** में नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव ये छह भेद कहे गये हैं ।[48]

ऋषभादि तीर्थंकरों, भरतादि केवलियों, आचार्यों एवं चैत्यालय आदि का भेद करके अथवा गुणगण भेद के आश्रित, शब्द कलाप से युक्त गुणों के स्मरणपूर्वक नमस्कार करना वन्दना है ।[49] एक तीर्थंकर को नमस्कार करना भी वन्दना है ।[50] रत्नत्रय धारक यति, आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्त्तक और स्थविरों की श्रद्धा सहित विनय करना वन्दना है ।[51] मोक्षमार्ग स्वरूप उत्तम आत्मा की वन्दना को श्रेष्ठ वन्दना कहा गया है ।[52] उपर्युक्त चतुर्विंशति स्तव और वन्दना नामक आवश्यक **नियमसार** के भक्ति नामक आवश्यक में समाहित हो जाते हैं ।

प्रतिक्रमण में अतीत कालीन दोषों का निराकरण किया जाता है । अनागत दोषों के परिहार के लिये प्रत्याख्यान होता है । वर्तमान दोषों की आलोचना की जाती है । प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और आलोचना में विचारित दोषों के शोधन के लिये प्रायश्चित्त ग्रहण किया जाता है । प्रायश्चित तपश्चरण स्वरूप है । इसमें ही कायोत्सर्ग भी समाहित है । इस प्रकार दोषमुक्त होने के बाद परम-समाधि और भक्ति होती है । इनमें सामायिक और ध्यान ही प्रमुख क्रियायें हैं । यह आवश्यकों की प्राचीन परम्परा है । वर्तमान आवश्यक परम्परा के चतुर्विंशति स्तव और वन्दना का समायोजन भक्ति में तथा कायोत्सर्ग का समायोजन प्रायश्चित्त में हो जाता है । सामायिक तो समाधि है ही ।

उपर्युक्त विवरण से यह ज्ञात होता है कि कुन्दकुन्द के समय में आवश्यकों की उक्त प्राचीन परम्परा प्रचलित थी, जिसे संशोधित करके नवीन परम्परा विकसित हुई । इन आवश्यकों का सतही अवलोकन करने से दोनों में अन्तर प्रतीत होता है, किन्तु सूक्ष्मता से अध्ययन करने पर वह समाप्त हो जाता है । आजकल **मूलाचार** और **आवश्यक सूत्र** की आवश्यक परम्परा ही प्रचलित है ।

सन्दर्भ सूची

१. नियमसार, गाथा १४१-१४२ २. मुलाचार, ७/२४
३. अनगार धर्मामृत, ८/१६ ४. नियमसार, १४३–१४७
५. वही, गाथा १५८ ६. वही, गाथा ८३–९२
७. मूलाचार, १/२६ ८. धवला, १३/५, ४, २६/६०/८
९. तत्वार्थवार्तिक, अध्याय ६, सूत्र २४
१०. गोम्मटसार जीवकाण्ड जीव-तत्व-प्रदीपिका टीका, गाथा ३६७
११. मूलाचार, ७/११२ १२. नियमसार, ९५–१०५
१३. समयसार, गाथा ३७४ १४. मूलाचार, १/२७
१५. अनागतदोषापोहन प्रत्याख्यानम् ।—तत्वार्थवार्तिक, अ–६, सूत्र–२४
१६. नियमसार, ता. वृ. टीका, गाथा ९५ १७. मूलाचार, ७/३६–१३८
१८. भगवती आराधना विवृति, गाथा ११६ एवं ५०९
१९. नियमसार, गाथा १०७ २०. समयसार, गाथा ३८५
२१. भगवती आराधना, गाथा ६ की टीका
२२. वही, गाथा ५६२; मुलाचार, ११/१६
२३. नियमसार, गाथा १०८–११२ २४. मूलाचार, ७/११८
२५. भगवती आराधना, गाथा ५३३
२६. नियमसार, गाथा ११३, ११६
२७. मूलाचार, ५/१६४; धवला, १३/५, ४, २६/५९/८
२८. कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गाथा ४५१, ४५५ २९. अनगार धर्मामृत, ७/३७
३०. मूलाचार, ५/१६५ ३१. अनगार धर्मामृत, ७/५९
३२. तत्वार्थसूत्र, ९/२२ ३३. नियमसार, गाथा १२१
३४. वही, गाथा ७० की ता. वृ. टीका
३५. मूलाचार, ७/७२; भग. आरा., गाथा ११६ की टीका; अनगार धर्मामृत, ८/१३३ ३६. नियमसार, १२२–१३३
३७. मूलाचार, ७/२०
३८. धवला, ८/३, ४१/८४/१; चारित्रसार, पृ० ५६; अमितगति श्रावकाचार, ८/३१, ३९. योगसार; अमितगति, ५/४७
४०. तत्वार्थवार्तिक, अध्याय ६, सूत्र २४
४१. कसायपाहुड, १/१, १/८१/९८/५
४२. वही, १/१, १/८१/९७/४; भग. आरा., गाथा ११६

(शेष पृष्ठ २३० पर)

हिन्दी रासो काव्य परम्परा में जैन कवियों का योगदान

–डा० (कु०) मालती जैन

हिन्दी साहित्य में रासो काव्य ग्रन्थों का उल्लेखनीय स्थान है। रास परम्परा शैली, रूप, गठन एवं मौलिक विशेषताओं के कारण अपना विशिष्ट स्थान रखती है। यह काव्य परम्परा हिन्दी साहित्य के आदिकाल से प्रारम्भ होकर बीसवी शताब्दी तक अविरल रूप से प्रवाहित होती रही है। यद्यपि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी से पूर्व हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक अलोचकों ने जैन कवियों के साहित्य सृजन पर धार्मिकता और साम्प्रदायिकता का ठप्पा लगाकर उसकी उपेक्षा की, लेकिन परवर्ती आलोचकों ने रासो साहित्य में जैन कवियों के अवदान को मुक्त कण्ठ से सराहा है। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि यदि रासो साहित्य से जैन कवियों द्वारा रचित काव्य ग्रन्थों को निकाल दिया जाये तो रासो काव्य ग्रन्थ उँगलियों पर गिनने लायक रह जायेंगे।

अद्यावधि उपलब्ध रासकाव्यों में जैन कवि जिनदत्त सूरि कृत **उपदेश रसायन रास** को प्राचीनतम रासो काव्य होने का सौभाग्य प्राप्त है। इसका रचनाकाल संवत् ११३२ तथा १२११ के मध्य माना जाता है। इसकी भाषा अपभ्रंश से बहुत कम अंशों में भिन्नता

(पृष्ठ २२९ का शेष)

४३. **मूलाचार**, ७/१७; **अनगार धर्मा.**, ८/१८–३५; **गो. जीव.**, गाथा ३६७ की टीका ४४. **नियमसार**, गाथा १३४–१४०

४५. **सर्वार्थसिद्धि**, अ० ६, सू० २४

४६. **मूलाचार**, १/२४; **तत्वार्थवार्तिक**, ६/२४; **अनगार धर्मामृत**, ८/३७

४७. **भगवती आराधना**, गाथा ५०६ की टीका

४८. **मूलाचार**, ७/३७; **अनगार धर्मामृत**, ८/३८

४९. **धवला**, ८/३, ४१/८४/३

५०. एयरस्स तित्थयरस्स णमंसणं-वंदणाणाम।—**कसायपाहुड**, १/१–८६/१११/५ ५१. **भगवती आराधना**, गाथा ११६ की टीका

५२. **योगसार**, ५/४६ ★

रखती है, और नवोदित आर्य भाषाओं की छाप भी इस पर है। स्वयं कवि ने इस रचना को रासक नाम नहीं दिया है, किन्तु इसके टीकाकार जिनपाल उपाध्याय ने इसे रासक माना है। इसमें जैन धर्म से सम्बन्धित स्फुट उपदेश ८० पदों में दिये गये हैं। प्रारम्भ में कवि भगवान पार्श्वनाथ एवं भगवान महावीर के चरणों में अपने श्रद्धासुमन समर्पित करता हुआ जीवन की क्षण-भंगुरता की ओर संकेत करता है—

पठामह पास - वीर जिण भाविण
तुम्हि सब्वि जिव मुच्चहुं पाविण
घर-ववहारि म लग्गा अच्छह
खीठो-खीठो आउ गलंतउ पिच्छह

अर्थात्—हे भद्र मनुष्यों, पार्श्वनाथ और महावीर जिनेन्द्र को निर्मल भावों से प्रणाम करो। तुम सब पाप से मुक्त हो जाओगे। केवल गृह-व्यापार में ही न लगे रहो। क्षण-क्षण गलती हुई आयु को भी देखो।

जैन रासो साहित्य को विषय-वस्तु की दृष्टि से निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(क) पौराणिक रासो काव्य परम्परा
(ख) धार्मिक रासो काव्य परम्परा
(ग) रोमांचक रासो काव्य परम्परा

(क) पौराणिक रासो काव्य परम्परा—जैन पौराणिक रासो काव्यों में त्रेसठ शलाका पुरुषों के उदात्त चरित्रों की महिमा मंडित यशोगाथा है। इन पौराणिक रासो काव्यों का मूल उद्देश्य महापुरुषों के चरित्रों के माध्यम से जैन धर्म के प्रमुख सिद्धान्तों का प्रतिपादन रहा है। इन पौराणिक रासो काव्यों को पाँच वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) रामकथा सम्बन्धी रास काव्य
(२) कृष्ण कथा सम्बन्धी रास काव्य
(३) नेमिनाथ रास काव्य

(४) भरतेश्वर-बाहुबलि रास काव्य
(५) स्फुट रास काव्य

(१) **राम कथा सम्बन्धी रास**—जैन परम्परा में राम-कथा की कई धारायें प्रचलित हुई हैं, यथा—विमल सूरि के **पउमचरिय** (प्राकृत) व स्वयंभू की **रामायण** (अपभ्रंश) और गुणभद्र के **उत्तर पुराण** (संस्कृत) पर आधारित तथा हेमचन्द्र के **त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित** (संस्कृत) पर आधारित। रासो रूप में यह कथा माधोदास चारण द्वारा रचित **रामगुन रासो**[1] और केशराज कृत **राम-यशो-रसायन-रास**[2] में मिलती है। माधोदास की कृति का रचनाकाल सं० १६७५ है और इसमें युद्ध वर्णनों की प्रचुरता है; कवि ने ओज प्रधान भाषा-शैली में राम-रावण युद्ध के सजीव चित्र प्रस्तुत किए हैं। केशराज की कृति की रचना विक्रम सं० १६८३ में हुई थी, इसमें राजस्थानी भाषा पर गुजराती प्रभाव परिलक्षित होता है; वर्णनात्मक शैली की प्रधानता है परन्तु कतिपय अंश मर्मस्पर्शी बन पड़े है, यथा, जब राम सीता को निर्वासित कर देते हैं तब भी पतिप्राणा, उदारहृदया सीता उनके लिये शुभकामनायें ही प्रकट करती है।

(२) **कृष्ण कथा सम्बन्धी** तीन रास प्राप्त हैं। पन्द्रहवी शताब्दी में शालिभद्र सूरि कृत **पंच पाण्डव चरित रासु**[3] में महाभारत की कथा जैन परम्परा के अनुसार वर्णित है। वीर तथा शांत रस के साथ ही शृंगार रस के भी सुन्दर वर्णन इसमें उपलब्ध हैं। सं० १५२० में जिनब्रह्मदास कृत **हरिवंश पुराण रास** एक विशाल काय ग्रन्थ है जिसमें अनेक अन्तर्कथाओं का समावेश है। यह एक पद्यबद्ध कथा है जिसका प्रमुख उद्देश्य धार्मिक भावना प्रदीप्त करना है। श्री भूषन द्वारा संवत् १६५६ की पौष सुदी तेरस को रचित **प्रद्युम्न कुमार रास**[4] का प्रमुख आकर्षण है इसकी गेयता है; नारद के द्वारा कृष्ण से किया गया रुक्मिणी का रूप वर्णन नख-शिख परम्परा का है।

(३) **नेमिनाथ रास**—राजुल नेमिनाथ की कथा जैन साहित्य की अत्यधिक लोकप्रिय प्रणय-विरह कथा है। नेमिनाथ-राजुल विवाह

प्रसंग पर प्रभूत मात्रा में रासो साहित्य का सृजन हुआ है, यथा—**नेमिनाथ रास**—सुमति गणि (लगभग सं० १२७३), **नेमिनाथ रास**—जिनप्रभ (लगभग १३वीं शताब्दी), **नेमिनाथ रास**–हेमसार, **नेमिनाथ रास**—अज्ञात और **नेमिनाथ रास**—पुण्य रत्न (१७वीं शताब्दी)।

उपर्युक्त में पुण्य रत्न कृत **नेमिनाथ रास**[5] प्रमुख है। इसमें भगवान नेमिनाथ का सम्पूर्ण जीवन चरित्र वर्णित है। इसकी काव्य कला उच्च कोटि की है।

(४) **भरतेश्वर बाहुबलि रास**—भरत चक्रवर्ती तथा उनके लघु भ्राता बाहुबलि के कथानक पर आधारित दो प्रमुख रास ग्रन्थ हैं:–१–**भरतेश्वर-बाहुबलि घोर रास**—इसकी हस्तलिखित प्रति श्री अगरचन्द नाहटा को जैसलमेर के खरतर गच्छीय पंचायती भण्डार में उपलब्ध हुई थी। इसमें ४८ छन्द हैं; प्रधान रस वीर है जिसकी परिणति निर्वेद में होती है; भरत-बाहुबलि के युद्ध का ओज पूर्ण वर्णन इस ग्रन्थ का प्रमुख आकर्षण है। २–**भरतेश्वर बाहुबलि रास**—विक्रम सं० १२४१ के फाल्गुन मास की पंचमी तिथि को २०३ छन्दों में निबद्ध शालिभद्र सूरि कृत यह रासो काव्य कला की दृष्टि से सुन्दर कृति है। इसकी हस्तलिखित प्राचीनतम प्रति बड़ोदरा में श्री कांति विजय जी के संग्रहालय में हैं।

(५) **स्फुट रास**—मतीराज कृत **नल दवदंती रास**[6] सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ की कृति है। वर्णनों से भरपूर इस कृति में दमयन्ती का रूप वर्णन एवं विरह वर्णन विशेष रूप से दृष्टव्य है। धर्म समुद कृत **शकुन्तला रास** पौराणिक आख्यान पर आधारित है। काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से यह ग्रन्थ वर्णनात्मक है। प्रत्येक स्थल पर कवि की धार्मिकता का प्राधान्य है। कनक सुन्दर ने **हरिश्चन्द्र रास**[7] की रचना सं० १६५७ में श्रावण शुक्ल पंचमी को पूरी की। रानी तारा का रूप वर्णन और तारा की करुण दशा एवं कुमार की मृत्यु पर उसके विलाप आदि का वर्णन अत्यधिक मर्मस्पर्शी है। स्थूल भद्र की कथा भी जैन साहित्य की एक अत्यन्त

लोकप्रिय कथा है। इस कथा पर आधारित तीन रास मुख्य हैं— **थूलिभद्र रास** (जिनधाम कृत, सं० १२६०), **स्थूल भद्र रास** (लिसंक्क कृत, सं० १५२२) और **स्थूलभद्र रास** (अज्ञात)। इन रासो ग्रन्थों की कथावस्तु शकटार, वररूचि, कोशा वेश्या एवं मुनि स्थूल भद्र से सम्बन्धित है।

कुछ अन्य रास ऐसे भी उपलब्ध हैं जिनकी कथा पुराणों से नहीं ली गई है, परन्तु कथावस्तु का प्रतिपादन उन्हीं की भाँति हुआ है, यथा—कवि मैलिग रचित **सुदर्शन रास**—इसका रचना काल सं० १५७१ है; हस्तलिखित प्रति पाटन के जैन भण्डार में उपलब्ध है; शील के महत्व को प्रदर्शित करने वाली यह कथा जैन धर्मावलम्बियों में बहुत प्रचलित है। १६वीं शती का रत्नसमुद्र के शिष्य सहज-सुन्दर का **परदेसीराय रास**—इस रासो की कथा स्वेतवती नगरी के राजा परदेसीराय से सम्बन्धित है जो अपने धर्मात्मा मन्त्री की प्रेरणा से जैन मुनि के उपदेश सुनकर जीव हत्या बन्द कर देता है और अन्त में जैन धर्म में दीक्षित हो जाता है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में जैन धर्म के स्फुट उपदेश हैं जो मुनि और परदेसीराय के संवादों के माध्यम से वर्णित हैं।

(ख) धार्मिक रासो काव्य परम्परा—यद्यपि समस्त जैन रास काव्य की मूल संवेदना धर्म ही है, किन्तु प्रस्तुत धार्मिक रासो ग्रन्थों में धार्मिक उपदेशों का प्रतिपादन बिना किसी कथा के माध्यम के किया गया है। काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से इन ग्रन्थों का बहुत अधिक महत्व नहीं हैं, किन्तु रास शैली एवं परम्परा की दृष्टि से इनके महत्व को नकारा नहीं जा सकता। धार्मिक रास चार प्रकार के हैं—स्फुट उपादेशात्मक, व्रतों से सम्बन्धित, तीर्थों से सम्बन्धित तथा जैन तीर्थंकरों एवं मुनियों से सम्बन्धित। स्फुट उपदेशात्मक रास काव्यों के अन्तर्गत शीलभद्र सूरि कृत **बुद्धिरास**, कवि असगु कृत **जीवदया रास** (सं० १२५७), अज्ञात कर्त्तक **सप्तक्षेत्रिरास** (सं० १३२७), श्रावक हीराचंद कृत **उपदेश रास**, पांडे जिनदास कृत **जोगीरासो**[8], **खिचड़ी रास, समाधि रास** (लेखक अज्ञात), धर्म सिंह

का **शील रास**, रामचंद कृत **उपदेशको रास**, ज्ञानचंद कृत **सार सिखामन रास** और प्रभुचंद कृत **जीव सिखामण रास** उल्लेखनीय हैं। इन सभी ग्रन्थों में श्रावक के लिये जैन धर्म के उपदेश दिये गये हैं।

जैन धर्म में त्याग-तपस्या का विशेष महत्त्व है। इन्द्रिय-निग्रह के लिये विभिन्न व्रतों का विधान किया गया है। फलत: इन व्रतों से सम्बन्धित रासो ग्रन्थों की रचना भी हुई जिनमें उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं—सकल कीर्त्ति कृत **सोलह कारण रासा**[9] में सोलह कारण व्रत के महत्त्व की कथा कही गयी है। अज्ञात रचनाकार की कृति **आदित्यवार कथा रास**[10] में रविवार के व्रत के महत्त्व का वर्णन किया गया है; पुष्पिका में सं० १६७० का उल्लेख है। भट्टारक शुभचंद द्वारा रचित **अठाई रास**[11] में अष्टाह्निका व्रत का महत्त्व वर्णित है।

जैन धर्म में भी तीर्थ वन्दना का विशिष्ट महत्त्व है। जैन कवियों ने रास शैली में विभिन्न जैन तीर्थों के मनोरम वर्णन एवं उनकी वन्दना का धार्मिक महत्त्व प्रतिपादित किया है। कुछ लोकप्रिय रचनायें निम्न प्रकार हैं—विजय सेन सूरि के **रेवत गिरि रास**[12] में प्रसिद्ध तीर्थ रेवंत गिरि का वर्णन है तथा उससे सम्बन्धित महात्माओं की स्तुति है; इसका रचनाकाल विक्रम सं० १२८८ माना गया है; इसका उद्देश्य गिरनार के जैन मन्दिरों के उद्धार की कथा कहना है। ५५ छन्दों का **आबू रास**[13] पाल्हण रचित है; इसमें वस्तु पाल व तेज पाल द्वारा आबू पर्वत पर मंदिर बनवाने का वर्णन है; रचनाकाल वि० सं० १२८९ है। **कच्छलि रास**[14] के रचयिता श्री प्रज्ञातिलक हैं; इस में कच्छूली का धार्मिक महत्त्व वर्णित है। इसकी रचना सं० १३६३ में कोरिटावड़ि में हुई थी। श्री समयसुन्दर रचित **शत्रुंजय उद्धार रास**[15] का रचनाकाल सं० १६४२ है; काव्य का मुख्य उद्देश्य तीर्थ का पुनरुद्धार वर्णन हैं।

जैन साहित्य में चरित ग्रन्थों की एक सुदीर्घ परम्परा है।

तीर्थंकरों और उल्लेखनीय पौराणिक एवं ऐतिहासिक व्यक्तियों के चरित को लेकर भी रासो साहित्य का सृजन हुआ। इस कोटि के कुछ प्रमुख रासो का सामान्य परिचय यहाँ दिया जा रहा है—धर्म सूरि कृत **जम्बू स्वामी रास**[16] में जम्बू स्वामी का चरित्र वर्णित है; राजा श्रेणिक के प्रश्न के उत्तर में जम्बू स्वामी के पूर्व भवों एवं तपस्या का वर्णन किया गया है; ग्रन्थ के अन्त में रचना काल सं० १२६६ का उल्लेख है। **महावीर रास** की रचना अभय तिलक गणि ने भीमवल्ली के जिनालय की प्रतिष्ठा के समय की थी। इसमें भगवान महावीर के जीवन चरित्र का वर्णन कम और प्रतिष्ठा-महोत्सव का वर्णन अधिक है; इसकी प्रति श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर, में उपलब्ध है। लक्ष्मी तिलक उपाध्याय द्वारा सं० १३१३ में रचित **शान्तिनाथ देव रास**[17] में भगवान शांतिनाथ का चरित्र वर्णित है तथा जिनालय की प्रतिष्ठा का उल्लेख है; काव्य कला की दृष्टि से कृति सुन्दर है। उपाध्याय विनय प्रभव द्वारा वि० सं० १४१२ में रचित **गौतम स्वामी रास**[18] में गौतम गणधर के जीवन की प्रमुख घटनायें वर्णित हैं। कवि जिनचंद्र सूरि कृत **अकबर प्रति-बोध रास**[19] विक्रम सं० १६२८ में रचा गया था; इसमें जिनचंद्र सूरि द्वारा अकबर को प्रभावित करने का वर्णन है। इसके अतिरिक्त अम्बदेव कृत **समरा रास**, समयप्रभ कृत **जिनभद्र सूरि पट्टाभिषेक रास**, समयप्रबोध कृत **युग प्रधान निर्वाण रास** तथा दर्शन विजय कृत **विजय तिलक सूरि रास** भी प्राप्त होते हैं।

(ग) रोमांचक रासो काव्य परम्परा--रोमांचक रासो काव्य परम्परा के अन्तर्गत उन काव्यों की गणना की जाती है जिनमें अलौकिक व अतिप्राकृतिक चरित्रों एवं घटनाओं का समावेश होता है। इन काव्यों में जादू-टोना, भूत-प्रेत, मन्त्र-तन्त्र, शाप-वर-दान आदि तत्त्वों का प्राधान्य रहता है। जैन कवियों ने इस शैली में भी रासो ग्रन्थों की रचना की है। यह शैली न सुखांत है और न दुखांत वरन् यह वैराग्यान्त है। कुछ प्रमुख रोमांचक रासो काव्य निम्नलिखित हैं—**संदेश रासक**[20] कवि अद्दह भान की एक अत्यन्त ही

सुन्दर रचना है; विजय नगर की एक विरहिणी एक पथिक के माध्यम से अपने पति के पास संदेश भेजती है और अन्त में जब पथिक को विदा करके वह लौटती है तो उसे अपना पति आता हुआ दिखाई देता है; मंगलाशा के साथ रास समाप्त होता है। तेरहवीं शताब्दी के कवि आसिगु के **चन्दनबाला रास**[21] का साहित्यिक दृष्टि से विशेष महत्त्व है; हथकड़ी और बेड़ी में जकड़ी चन्दन वाला के हाथ से कोदों का आहार लेकर भगवान महावीर उसे बन्धन-मुक्त कर देते हैं; अन्त में वह महावीर स्वामी से दीक्षा ले लेती है; कथा मर्मस्पर्शी है। जैन साहित्य की अत्यधिक लोकप्रिय पवनजय-अंजना कथा पर तीन रासो ग्रन्थ उपलब्ध हैं—भाल मुनि कृत **अंजना-सुन्दरी रास** (अप्रकाशित), विमलचरित कृत **अंजना-सुन्दरी रास** (प्रकाशित, रचना काल संवत १६६२), और **अंजना- सुन्दरी रास** (लेखक अज्ञात, लिपि काल सं० १७४७)। कवि जनहष के **श्रीपाल रास**[22] (सं० १७४०) में मैनासुन्दरी एवं श्रीपाल की कथा के माध्यम से सिद्धचक्र विधान एवं भगवान के गंधोदक का माहात्म्य वर्णित है। नय सुन्दर कृत **सुर सुन्दरी चरित रास** (सं० १६४४) एवं प्रसन्नचंद्र कृत **बलकल चीरी रास** (सं० १६४७) भी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जैन साहित्यकारों ने पौराणिक, धार्मिक एवं रोमांचक इन तीनों प्रकार की रासो काव्य परम्परा में विपुल साहित्य का सृजन कर, हिन्दी साहित्य के भण्डार को समृद्ध करने में जो अंशदान किया है वह अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं श्लाघनीय है। रासो परम्परा का स्वरूप कुछ भी रहा हो, जैन साहित्यकारों का प्रमुख उद्देश्य जैन धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन रहा है। प्राणिमात्र की मंगल कामना के पुनीत लक्ष्य को लेकर जैन कवियों द्वारा रचा गया यह रासो-साहित्य सत्साहित्य के आदर्श "सत्यं शिवं सुन्दरम्" से अभिमण्डित है।

सन्दर्भ सूची

१. अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर, प्रति नं० ६३, ६४, ६५

२. **मोतीचंद जी खजान्ची संग्रह**, बीकानेर, प्रति नं० (१) क (५) (२)—६, ७ तथा ३ ध; श्री आनन्द काव्य महोदधि भाग २ में १६१४ ई० में गुजराती लिपि में प्रकाशित; नागरी में हस्तलिखित प्रतियाँ श्री अगरचंद भंवरलाल नाहटा संग्रहालय, बीकानेर, में; सचित्र हस्तलिखित प्रति जैन सिद्धान्त भवन, आरा, में जो वहां से १६६१ ई० में The Illustrated Manuscript of Jaina Ramayana के रूप में प्रकाशित (दृष्टव्य, **शोधादर्श**, १५, पृ० ७८—८१)

३. **गुर्जर रासावलि**, बड़ौदा (गायकवाड ओरियन्टल सीरीज, ११३); रास और रासान्वयी काव्य में भी इसका पाठ संकलित

४. मूलचंद किशनदास, मन्त्री, दिगम्बर जैन गुजराती साहित्योद्धारक कड़े, सूरत, द्वारा गुजराती में प्रकाशित

५. अप्रकाशित अ० जै० ग्र० प्रति नं० ३४२०

६. **प्राचीन गुर्जर ग्रन्थ माला**, भाग १, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा, से प्रकाशित

७. बालाभाई कमललाल शाह जैन, बुक सेलर्स एण्ड पब्लिशर्स, अहमदाबाद, द्वारा प्रकाशित

८. अप्रकाशित, अभय जैन ग्रन्थालय प्रति नं० ३६६४

९. अप्रकाशित, रा० प्रा० वि० प्र० जोधपुर गुटका नं० ५३७६

१०. अप्रकाशित, रा० प्रा० वि० प्र० जोधपुर गुटका नं० ४६१४

११. अप्रकाशित, रा० प्रा० वि० प्र० जोधपुर गुटका नं० ४६१४

१२. **प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह** तथा **रास और रासान्वयी काव्य** में प्रकाशित

१३. श्री नाथूराम प्रेमी : **प्राचीन जैन साहित्य का इतिहास**, पृ० २६

१४. **प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह**, भाग १, में प्रकाशित

१५. रा० प्रा० वि० प्र० जोधपुर प्रति नं० १००२

१६. **प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह** में प्रकाशित

१७. श्री अभय जैन ग्रन्थालय में उपलब्ध

१८. हस्तलिखित प्रति रा० पु० मन्दिर में प्राप्त; **रासान्वयी काव्य** में प्रकाशित

१९. अगरचन्द नाहटा : **ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह**

२०. श्री जिनविजय मुनि द्वारा सम्पादित व भारतीय विद्या भवन, बम्बई, से प्रकाशित

२१. **राजस्थान भारती**, भाग ३, अंक ४, में प्रकाशित

२२. अप्रकाशित, रा० प्रा० वि० प्र०, जोधपुर, प्रति नं० ६६१ ★

राजा चन्द्रगुप्त और आचार्य भद्रबाहु

–श्री वेद प्रकाश गर्ग

जैन परम्परा में चन्द्रगुप्त नाम के एक राजा का बहुत उल्लेख मिलता है, जिसने आचार्य भद्रबाहु से दीक्षा ली थी और जीवन का अन्तिम काल श्रवणबेलगोला में व्यतीत कर वहीं जैन साधु के रूप में प्राण त्याग किया था। इस चन्द्रगुप्त को प्रायः 'मौर्य' समझ लिया गया है, किन्तु यह धारणा सही प्रतीत नहीं होती, क्योंकि प्राप्त सामग्री से इस की पुष्टि नहीं होती है। अतः चन्द्रगुप्त से सम्बन्धित जैन-परम्परा के उल्लेखों पर विचार अपेक्षित है, जिससे वास्तविकता का पता चल सके।

जैन-ग्रन्थ-साहित्य में चन्द्रगुप्त के काल के बारे में जो सूचनायें मिलती हैं, उनमें परस्पर भिन्नता दिखलाई पड़ती है। ये सूचनायें इस प्रकार हैं—

१. **तिलोयपण्णति** के अनुसार जिस दिन महावीर का निर्वाण हुआ, उसी दिन अवन्ती में पालक का राज्याभिषेक हुआ। पालक के ६० वर्ष बाद विजयवंश का अभ्युदय हुआ और उसके १५५ वर्ष बाद चन्द्रगुप्त गद्दी पर बैठा। तत्सम्बन्धी गाथाएं निम्न रूप में हैं—(दे० शोलापुर संस्करण)—

जं काले वीर जिणो णिस्सेयस संपयं समावण्णो।
तक्काले अभिविसत्तो पालय णामो अवंतिसुदो ।। ९५ ।।
पालक रज्जं सट्टिं इगिसयपण वण्णं विजय संगवा।
कालं मरुद्य वंसा तीसं वंसातु पुस्समित्तमि ।। ९६ ।।

इससे चन्द्रगुप्त के अभिषेक के (६०+१५५=२१५) वर्ष पूर्व महावीर का निर्वाण-काल मानना होगा।

२. **तिलोयपण्णति** में ही यह परम्परा भी मिलती है कि गौतम, सुधर्मा और जम्बू स्वामी, ये तीन केवली महावीर के बाद ६२ वर्षों के अन्दर हुए और फिर उनके बाद ५ महापुरुषों का सयुक्त काल १०० वर्ष है। ये पाँच महापुरुष हैं—नन्दी, नन्दि मित्र, अप-

राजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु । भद्रबाहु, चन्द्रगुप्त के गुरू थे । अतः दोनों वीर निर्वाण के १६२ वर्ष बाद वर्तमान थे । इस सम्बन्ध में **तिलोयपण्णति** के पुराने संस्करण की ६६ से ६८ तथा ७१ से ७८ संख्यक गाथाएँ दृष्टव्य हैं ।

३. आचार्य हेम चन्द्र (१०८८—११७० ई०) के **परिशिष्ट पर्वन्** में कहा गया है कि वीर-निर्वाण के ६० वर्ष बाद नन्द राजा का अभिषेक हुआ—

अनन्तरं वर्द्धमान स्वामि निर्वाण वत्सरात् ।
गतायां षष्टि वत्सर्यामेष नन्दोभवन् नृपः ।। ६ । २४३

और वीर-निर्वाण के १५५ वर्ष बाद चंद्रगुप्त राजा हुआ—

एवं च महावीर मुत्ते वर्ष शते गते ।
पञ्च पञ्चाशदधिके चंद्रगुप्तो भवन् नृपः ।। ८ । ३३९

४. भद्रेश्वर सूरि भी यही कहते हैं कि वीर-निर्वाण के १५५ वर्ष बाद नंद वंश का अंत होकर चंद्रगुप्त को राज्य मिला । उनके शब्द हैं—'एवं च महावीर मुत्ति समयाओ पञ्चावण वरि समये पञ्छएणो नन्द वंसे चन्द्र गुत्तो राया जाओति ।'

५. सं० १३६३ के लगभग रची गई मेरुतुंग की **विचार श्रेणी** में भी बताया गया है कि जिस रात महावीर का निर्वाण हुआ, उसी रात अवंती में राजा पालक का अभिषेक हुआ । पालक ने ६० वर्ष राज्य किया, नन्दों का शासन-काल १५५ बर्ष बाद तक रहा । इस प्रकार चन्द्रगुप्त का राज्यारोहण वीर-निर्वाण के २१५ वर्ष बाद हुआ । इस ग्रन्थ में चन्द्रगुप्त को 'मौर्य' बताने के अनुकूल सामग्री दी गई है । मेरुतुंग के शब्द हैं—

जं रयणिं काल गओ अरिहा तीर्थंकरो महावीर ।
तं रयणिम् अवन्ति वै अहिसित्तो पालगो रागा ।।
सट्ठि पालग रण्णो पण्णपण्णासयं तु होइ नन्दाण ।
अट्ठसयं मुरियाणां तीसंचिय पुस्समित्तस्स ।।

६. **हार्ट आफ जैनिज्म** नामक ग्रन्थ में उद्धृत श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार महावीर के बाद हुए आचार्यों के नाम और

आचार्यत्व काल इस प्रकार है—इन्द्रभूति १२ वर्ष, सुधर्मा १२ वर्ष, जम्बू स्वामी १०० वर्ष, प्रभव ९ वर्ष, स्वयम्भव और यशोभद्र ७४ वर्ष, सम्भूत विजय २ वर्ष और फिर भद्रबाहु। अतः वीर-निर्वाण के २०९ वर्ष बाद भद्रबाहु आचार्य हुए।

इस प्रकार परम्परा के बारे में पहली ध्यान देने योग्य बात यह है कि चन्द्रगुप्त के जन्म, अभिषेक और मृत्यु का काल स्पष्ट रूप से कहीं नहीं बतलाया गया है। भद्रबाहु के जन्म एवं मृत्यु के काल का भी स्पष्ट निर्देश नहीं है। जितना निर्देश है, वह सापेक्ष है अर्थात् वीर-निर्वाण का जो काल माना जाएगा, भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त का काल उसके इतने वर्ष बाद आएगा। दूसरे शब्दों में, यदि भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त का काल निश्चित कर लिया जाए, तो उसके इतने वर्ष पूर्व वीर-निर्वाण-काल आएगा। इस अनिश्चय से बचने के लिए मान लिया जाता है कि चन्द्रगुप्त और कोई नहीं, मौर्य वंश का संस्थापक ही है और वह सिल्यूकस का समकालीन था। किन्तु चन्द्रगुप्त मौर्य और सिल्यूकस की यह समकालीनता एक काल्पनिक एवं मनगढ़न्त आधार पर अवलम्बित है, वास्तविक नहीं। इस भ्रमात्मक तथ्य का खण्डन कई विद्वान कर चुके हैं। अतः देखना केवल यह है कि जैन परम्परा में उल्लिखित इस चन्द्रगुप्त को 'मौर्य' मानने का आधार क्या है? अर्थात्, इसकी पहचान चन्द्रगुप्त मौर्य से करना ठीक है या नहीं।

यह बात तो सही है कि चन्द्रगुप्त मौर्य मगध का राजा था और नन्द वंश के बाद वह राजा हुआ था। हेमचंद्र सूरि, भद्रेश्वर सूरि और मेरुतुंग आदि चंद्रगुप्त के काल के बारे में एक मत न होते हुए भी चंद्रगुप्त का संबंध मगध से जोडने में वे सहमत लगते हैं, क्योंकि चन्द्रगुप्त मौर्य के पूर्व नन्दों का और मौर्य वंश के पश्चात पुष्य मित्र का शासन मगध की घटना मान ली गई है। किन्तु ये ग्रन्थकार निरपवाद रूप से बहुत बाद के हैं। अतः भद्रबाहु के शिष्य चन्द्रगुप्त का सम्बन्ध मगध से जोड़ने वाली परम्परा प्राचीन नहीं है।

ध्यातव्य है कि चन्द्रगुप्त का मगध से सम्बन्ध जोड़ने वाली सामग्री परवर्ती तो है ही, साथ ही अनिर्णायक भी है। संस्कृत साहित्य में कहीं भी चन्द्र गुप्त मौर्य के जैन-दीक्षा लेने और सन्यासी हो जाने का उल्लेख नहीं मिलता और न ही किसी प्राचीन जैन साक्ष्य से इसका समर्थन होता है। महावीर-निर्वाण के समय ही जिस पालक का अभिषेक हुआ, उसे प्राचीनतम साक्ष्य **तिलोयपण्णति** में स्पष्टतः 'अवन्ति सुदो' (अवन्ति सुत) कहा गया है। उसके ६० वर्ष के शासन के बाद जिस वंश का शासन आरम्भ हुआ, उसे प्राचीनतम साक्ष्य 'नन्द वंश' नहीं कहता (ऐसा तो हेमचन्द्र सूरि आदि परवर्ती ग्रन्थकार कहते हैं) अपितु 'विजय वंश' कहता है। नन्द वंश की शासनावधि किसी भी पुराण में १३६ वर्ष से अधिक नहीं है, किन्तु विजय वंश की शासनावधि १५५ वर्ष है। चन्द्रगुप्त के मौर्य वंश ने १०८ वर्ष शासन किया बताया गया है, जबकि ब्राह्मणीय पुराणों के अनुसार मौर्य वंश की अवधि १३७ वर्ष है। पुष्य मित्र के वंश की अवधि केवल ३० वर्ष कही गई है, जबकि पुराणों में पुष्यमित्र के वंश की अवधि ११२ वर्ष निर्दिष्ट है।

पालक नाम का एक राजा मगध में भी हुआ अवश्य था, पर वह महावीर का पूर्ववर्ती था और उसकी शासनावधि केवल २४ वर्ष है। मगध में पालक के ६० वर्ष बाद कोई दूसरा राज वंश नहीं आया। पालक के शासनकाल के उपरान्त ९१ वर्ष बाद मगध में प्रद्योत वंश का शासनान्त हुआ (मगध के प्रद्योत वंश की कुल शासनावधि १३८ वर्ष है) और शिशु-नाग वंश का शासन शुरू हुआ। उसी शिशु-नाग वंश के शासन-काल में बुद्ध और महावीर दोनों ही की जीवन-लीला सम्पन्न हुई। इस शिशु-नाग वंश ने ३६२ वर्ष राज्य किया और तब नन्द वंश की स्थापना हुई। यह प्रद्योत वंश के मगध-नरेश पालक के अभिषेक से ४७७ वर्ष बाद की घटना है। अतः अवन्ति का पालक, मगध के पालक से और विजयवंश, नन्द वंश से भिन्न हैं। इसीलिए जैन चन्द्रगुप्त, चन्द्रगुप्त मौर्य से भिन्न है। मगध में नन्द वंश का विनाश करके चंद्रगुप्त मौर्य राजा बना

और उसका अभिषेक पाटलिपुत्र में हुआ। विजय वंश, अवन्ति में राजा पालक के ६० वर्ष बाद सत्ता में आया था और इसके १५५ वर्ष बाद जैन परम्परा का चंद्रगुप्त अवन्ति में गद्दी पर बैठा था।

प्रतीत होता है कि पालक, चंद्रगुप्त, पुष्यमित्र जैसे नामों में साम्य देखकर बाद के ग्रंथकार भ्रम में पड़ गए। मेरुतुंग की **विचार श्रेणी** में यह भ्रम अपने चरम रूप में उभर कर सामने आता है। वे अपने विवरण का आरम्भ अवन्ति से करते हैं और अन्त भी अवन्ति के गर्दभिल्ल, विक्रमादित्य आदि से करते हैं, किंतु बीच के राजवंशों का साम्य वे मगध के राजवंशों से कर बैठते हैं। इस प्रकार इस भ्रमात्मक घालमेल के फलस्वरूप पश्चातवर्ती जैन परम्परा में भ्रम वश 'चंद्रगुप्त' को 'चंद्रगुप्त मौर्य' समझ लिया गया। अत: जैन चंद्रगुप्त अवन्ति का राजा है, मौर्य नहीं। उसका काल-निर्णय मगध के चंद्रगुप्त मौर्य के काल-निर्णय से अलग होगा।

साथ ही यह ध्यान देने की बात है कि उक्त जानकारी में कुछ विरोधाभास भी है। एक पक्ष चंद्रगुप्त का राज्यारोहण वीर-निर्वाण के २१५ वर्ष बाद बताता है, और दूसरा १५५ वर्ष बाद। दोनों में पूरे ६० वर्ष का अन्तर है। इसी प्रकार भद्रबाहु का आचार्यत्व काल एक पक्ष १६२ वर्षा बाद बताता प्रतीत होता है और दूसरा २०९ वर्षा बाद। यहाँ भी ४७ वर्षों का अन्तर है। कौन पक्ष शुद्ध है और क्यों? मेरी समझ में लम्बे व्यवधान ने स्मृति को धूमिल और विपर्यस्त कर डाला है, फिर भी लगता है कि चारों तिथियाँ शुद्ध हैं और आवश्यकता केवल उन्हें यथा-स्थान रखने की है।

परम्परा ने भद्रबाहु और चंद्रगुप्त दोनों के जन्म काल को स्मरणीय समझा था। इसके अतिरिक्त आचार्य रूप में भद्रबाहु के पाट-अभिषेक का काल और चंद्रगुप्त के दीक्षा काल स्मरणीय थे, क्योंकि धार्मिक भावना के कारण ही जैन परम्परा में चंद्रगुप्त एवं भद्रबाहु को महत्त्व दिया गया है। चंद्रगुप्त जैन-दीक्षा लेने वाला अन्तिम मूर्धाभिषिक्त राजा था और उसे दीक्षा देने वाले थे अन्तिम

श्रुत-केवलि एवं युग-प्रभावक आचार्य भद्रबाहु । इसीलिये उसके और भद्रबाहु के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं को स्मरणीय समझा गया।

इस दृष्टि से देखें तो वीर-निर्वाण के १६२ वर्ष बाद भद्रबाहु का जन्म और २०९ वर्ष बाद उनका आचार्य बनना संगत प्रतीत होता है । चन्द्रगुप्त का जन्म वीर-निर्वाण के १५५ वर्ष बाद और दीक्षा काल २१५ वर्ष बाद मान सकते हैं। जिन ग्रंथकारों ने १५५ या २१५ वीर-निर्वाण संवत् को चन्द्रगुप्त का अभिषेक काल माना, वे भ्रम में थे । ६० वर्ष की उम्र में राज्य-सुख त्याग कर जैन साधु बनना असम्भव या अस्वाभाविक नहीं । ४७ वर्ष की उम्र में भद्रबाहु जैसे असाधारण प्रतिभाशाली की, आचार्यत्व-प्राप्ति भी अविश्वसनीय नहीं । गुरू की उम्र शिष्य से कम होना भी अनोखी बात नहीं, क्योंकि गुरू या पूज्य होना वय पर निर्भर नहीं है ।

उपर्युक्त विचारणा से निष्कर्ष यह निकलता है कि (अवन्ति में) विजय वंश का अन्त होने पर चन्द्रगुप्त राजा हुआ, यह कथन शुद्ध है, किंतु नन्द वंश का अन्त होने पर वीर-निर्वाण के १५५ या २१५ वर्ष बाद चन्द्रगुप्त राजा हुआ, यह कथन शुद्ध नहीं है। नाम-साम्य से परम्परा भ्रम में पड़ गई है । इसी लिये जैन-परम्परा में भ्रम वश चन्द्रगुप्त को चन्द्रगुप्त मौर्य समझ लिया गया था। वास्तव में जैन-परम्परा का चन्द्रगुप्त नन्दों का परवर्ती मगध-नरेश नहीं, वह अवन्ति का राजा था । इस भ्रमात्मक तथ्य की ओर संकेत कर सर्वप्रथम प्रकाश में लाने का श्रेय डॉ० उपेन्द्र नाथ राय को है, अतः वे साधुवाद के अधिकारी हैं ।

[**टिप्पणी**

लेखक के उपरोक्त विवेचन के सापेक्ष यह उल्लेखनीय है कि १२ वर्ष के दुर्भिक्ष और भद्रबाहु द्वारा चन्द्रगुप्त मौर्य को दीक्षा देने तथा श्रवणबेलगोला में चंद्रगुप्त मौर्य के जैन मुनि के रूप में तपस्या करने के उल्लेख बहुत परवर्ती हैं, प्राचीन अनुश्रुति व अभिलेखों से समर्थित नहीं हैं और विश्वसनीय नहीं हैं ।

धार्मिक-साम्प्रदायिक पक्षधरता के आधार से बहुत सी कल्पनायें भी ऐतिहासिक घटनाओं के रूप में प्रचार पा गईं । उनमें से एक

पुष्यमित्र शुंग को मगध का सर्वशक्तिमान राजा बना देने की है। वास्तव में उसका मगध से कोई संबंध था ही नहीं, वरन् वह मौर्यों की उज्जैनी शाखा से सम्बद्ध था और उसका प्रभाव क्षेत्र विदिशा में सीमित था।

जैन परम्परा उज्जैन के संदर्भ से प्रासंगिक है। महावीर निर्वाण के बाद अवन्ति में ६० वर्ष पालक और तत्पश्चात् १५० या १५५ वर्ष विजय या नन्द वंश का राज्य रहा तथा उसके बाद चन्द्रगुप्त मौर्य का आधिपत्य हुआ। यह घटना चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा मगध पर आधिपत्य कर लेने के ७ या १२ वर्ष बाद की है और उसमें कोई विसंगति प्रतीत नहीं होती।

ब्राह्मणीय पौराणिक अनुश्रुति के मगध के पालक और जैन अनुश्रुति के अवन्ति के पालक भिन्न हैं। परन्तु पालक के बाद अवन्ति में जिस 'विजय वंश' का उल्लेख जैन साहित्य में है वह मगध के 'नन्द वंश' से भिन्न नहीं है। जैन परम्परा में उल्लिखित 'चन्द्रगुप्त' भी मगध के 'मौर्य वंशी चन्द्रगुप्त' से भिन्न नहीं है। चन्द्रगुप्त और चाणक्य के सम्बन्ध में प्राचीन जैन साहित्य में ब्राह्मणीय पौराणिक एवं लौकिक संस्कृत साहित्य की अपेक्षा कहीं अधिक सामग्री मिलती है जिसका विवेचन श्री सी० डी० चटर्जी ने B. C. Law Volume में 'Early Life of Chandragupta Maurya' के अन्तर्गत और डा० ज्योति प्रसाद जैन ने **जैन सिद्धान्त भास्कर**, १५/१ (जुलाई १९४८), में अपने लेख 'चन्द्रगुप्त-चाणक्य इतिवृत्त के जैन आधार' में किया है।

भद्रबाहु को यदि द्वादश-वर्षीय दुर्भिक्ष और चंद्रगुप्त मौर्य को दीक्षित करने की किम्वदंतियों से अलग कर दिया जाए तो उनके काल निर्णय में पारम्परिक अनुश्रुतियां विशेष बाधक नहीं हैं और उनका समय महावीर के बाद १६२ से १७८ वर्ष तक सूचित होता है।

मौर्यों-शुंगों-कण्वों-सातवाहनों के काल-क्रम निर्णय के सम्बन्ध में हमारी Political and Cultural History of Mid-North India अवलोकनीय है। —डा० शशि कान्त]

भारत के इतिहास के पुनर्निर्माण में जैन सामग्री के उपयोग की आवश्यकता*

—श्री रमा कान्त जैन

'इतिहास' शब्द 'इति इह आसीत्' इन तीन शब्दों से मिलकर बना है—जैसा कि सुप्रसिद्ध पुराण-इतिहासकार आचार्य जिनसेन, जो आठवीं-नवीं शती ईस्वी में हुये और राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष के साम्राज्यान्तर्गत रहे, ने **आदि पुराण** में निरूपित किया है। इसका अर्थ है, 'यहाँ ऐसा हुआ था'। इस प्रकार अतीत में घटित घटनाओं का क्रमबद्ध प्रामाणिक विवरण 'इतिहास' है, जो 'इतिवृत्त' या 'ऐतिह्य' भी कहलाता है। वह प्राय: उल्लेखनीय एवं चिरस्मरणीय व्यक्तियों से सम्बन्धित होता है और उनके चरित्र या कार्यकलापों पर आधारित होता है। इसके साथ ही वह 'महाभ्युदयशासनम्' भी होता है, अर्थात्, जो उसे पढ़ते, सुनते और गुनते हैं, उनके महान लौकिक उत्कर्ष का कारण भी होता है। अपने पूर्व-पुरुषों के गुणों एवं कार्यकलापों को जानकर मनुष्य स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करता है, उनसे प्रेरणा और स्फूर्ति प्राप्त करता है, और सबक भी लेता है—उनके द्वारा की गई गल्तियों को दुहराने से बचता है। इस प्रकार अतीत के पृष्ठों का सदुपयोग वर्तमान के संदर्भ में करके लाभान्वित हुआ जा सकता है। यही इतिहास की सार्थकता और उपयोगिता है। इसीलिये इतिहासकार का दायित्व है कि वह इतिहास रूपी दीपक द्वारा अतीत संबंधी अज्ञान एवं भ्रान्तियों के अंधकार को दूर करके बीती हुई घटनाओं और तथ्यावलि को निष्पक्ष दृष्टि से यथावत प्रकाशित कर दे—

इतिहासप्रदीपेन मोहावरणघातिना ।
सर्वलोकधृतं गर्भं यथावत्संप्रकाश्येत् ।।

हमारे देश भारतवर्ष में सनातन काल से विभिन्न जातियों, वर्गों और धार्मिक आस्थाओं के लोग रहते आये हैं। भारतीय

* २१-४-१९९७ को 'जैन-विद्या के विविध आयाम' संगोष्ठी में पठित शोधपत्र।

संस्कृति न द्रविड़ है न आर्य, न वैदिक अथवा पौराणिक है और न जैन अथवा बौद्ध, वह न हिंदू है न मुसलमान, वरन् वह तो मानवी इतिहास के प्रारम्भ से ही अविच्छिन्न चली आई अपने-अपने ढंग पर सुविकसित अनेक विभिन्न विविध संस्कृतियों के परस्पर आदान-प्रदान, सम्मिश्रण तथा संश्लेषण से निष्पन्न एक अखिल भारतीय संस्कृति है। क्षेत्र और काल के अनुसार विभिन्न उद्गमों से निस्सृत, विभिन्न मार्गों से विभिन्न प्रदेशों में बहती, विकसित होती, अनेक धाराओं के रूप में यह अंततः भारतीय सांस्कृतिक महासागर के रूप में आज उपलब्ध हो रही है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यही है कि यह व्यष्टि में समष्टि और समष्टि में व्यष्टि—एक में अनेक तथा अनेकता में एकता–का ज्वलन्त दृष्टांत प्रस्तुत करती है। इसके निर्माण और विकास का श्रेय किसी एक धर्म, जाति, वर्ग, प्रदेश या व्यक्ति को नहीं है, वरन् भारतवर्ष के इतिहासकालीन ही नहीं, प्रागऐतिहासिक भी, सभीं धर्मों, विचारधाराओं, जातियों, वर्गों, प्रदेशों और सर्वसाधारण को है। अस्तु, भारतवर्ष का इतिहास भी किसी एक धर्म के अनुयायियों, किसी एक विचारधारा के मानने-वालों, किसी एक जाति के लोगों, किसी एक वर्ग के व्यक्तियों, किसी प्रदेश विशेष अथवा किसी व्यक्ति विशेष की धरोहर नहीं है, अपितु वह भारतवर्ष के प्रत्येक भाग में मानवी सभ्यता के प्रारम्भ से रहती आयी सभी जातियों एवं सभी वर्गों के लोगों तथा सभी धर्मों के अनुयायियों व सभी विचारधारा वाले व्यक्तियों का इतिहास है।

जैन धर्म के पुरस्कर्ता ऋषभदेव से लेकर वर्द्धमान महावीर पर्यन्त २४ तीर्थंकर रहे हैं। यह धर्म और इसकी संस्कृति विशुद्ध भारतीय है तथा इसकी अनेक मान्यतायें मानवी सभ्यता के आदिम युग तक पहुँचती हैं। जैन धर्म और इसकी संस्कृति भारतीय संस्कृति की उस प्राचीन श्रमण-धारा का प्रतिनिधित्व करते हैं जो मूलतः अवैदिक ही नही, प्राग् वैदिक भी थी। श्रमण-धारा 'व्रात्य' भी कहलाती है क्योंकि इसमें व्रत, तप आदि पर बल दिया गया है। श्रमण-धारा के अन्तर्गत तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर और महात्मा बुद्ध के अनुयायियों

की, तथा मक्खलि गोशाल के आजीवक सम्प्रदाय की भी, गणना की जाती है, तदपि 'श्रमण' एक विशिष्टतया जैन संज्ञा है जो जैन मुनियों के लिये विशेष रूप से व्यवहार में आती रही है। प्राचीन जैन साहित्य में स्वयं भगवान महावीर के लिये 'समणे भगवं महावीरे' (श्रमण भगवान महावीर) का प्रयोग बहुलता से मिलता है। इस विशाल भारत देश के, आसेतु हिमांचल, कोने-कोने में प्रागैतिहासिक काल से ही जैन धर्मानुयायी रहते आये हैं और उन्होंने इस देश के सर्वांगीण विकास में अपना भरपूर योगदान किया है। परन्तु खेद की बात है कि भारत के इतिहास के पुनर्निर्माण में उनके साहित्य, अभिलेखों, अनुश्रुतियों और अन्य विविध प्रकार के योगदान की प्राय: उपेक्षा होती रही है।

भारत महादेश में यूरोपीय शक्तियों के आगमन और यहाँ ब्रिटिश सत्ता स्थापित होने पर अंग्रेजों को इस देश का क्रमबद्ध संग्रथित इतिहास अपने प्रशासनिक दृष्टिकोण से रचने की आवश्यकता अनुभूत हुई। उस समय इतिहास लेखन में रुचि रखने वाले अंग्रेज अधिकारियों और पाश्चात्य प्राच्यविदों ने विदेशियों के भारत-भ्रमण वृत्तान्तों, बौद्ध परम्परा के ज्ञात साहित्य और उनकी अनुश्रुतियों, ब्राह्मणीय परम्परा विषयक उपलब्ध साहित्य और अनुश्रुतियों, स्थानीय किंवदन्तियों, स्थानीय पुरातत्त्व, विद्यमान स्मारकों, प्राप्त प्राचीन मुद्राओं, प्राप्त अभिलेखों, आदि के आधार पर अपने ढंग से इस देश के इतिहास की प्रागैतिहासिक काल से संरचना आरम्भ की। विदेशी मुसलमान आक्रान्ताओं के आगमन के साथ सदियों तक शनैः-शनैः दासता के बन्धन में जकड़ते चले जा रहे और फिर अन्त में शनैः-शनैः अंग्रेजों द्वारा स्वयं पराभूत किये गये इस देश का इतिहास, विशेषकर राजनैतिक इतिहास, उन्होंने कुछ इस प्रकार रचा कि उसमें जहाँ एक ओर उन्होंने अपनी कूटनीतिक चालों की सफलताओं, सामरिक विजयों और अपने कार्यकलापों को उजागर किया, वहीं दूसरी ओर नैराश्योन्मुख भारतीय जनता को और अधिक निरुत्साहित करने तथा उनमें परस्पर फूट के बीज वपन

करते हुए भारत में अपने साम्राज्य के स्थायित्व का सपना संजोया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व, और उसके पश्चात आज भी प्रायः, भारत का यही इतिहास हमें पढ़ने-जानने को मिला।

यद्यपि पाश्चात्य प्राच्यविदों का कुछ-कुछ ध्यान जैन परम्परा के साहित्य, अभिलेख, अनुश्रुतियों और उनकी कला-सम्पदा आदि की ओर १८वीं शताब्दी से ही जाने लगा था और उन्होंने इस सम्बन्ध में अपने शोध-पत्र आदि भी प्रकाशित करने शुरू कर दिये थे, भारत के इतिहास लेखन में उनका यत्किंचित् उपयोग ही हो पाया था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त लोकतन्त्रात्मक, स्वतन्त्र, सार्वभौम राष्ट्र की अपेक्षा के अनुरूप भारत के इतिहास के पुनर्लेखन की आवश्यकता अनुभूत हुई, और भारतीय विद्या भवन तथा इन्डियन हिस्ट्री कांग्रेस द्वारा, तथा कई स्वतन्त्र इतिहासज्ञों द्वारा भी, यह कार्य कई चरणों में किया जाना आरम्भ किया गया। किन्तु इस पुनर्लेखन में भी जैन सामग्री का समुचित उपयोग नहीं हुआ। फलतः पाठ्य पुस्तकों में जैन सामग्री के समन्वय से प्राप्त हो सकने वाली जानकारियों और इस राष्ट्र के अभिन्न अंग जैन धर्मानुयायियों द्वारा समय-समय पर किये गये विविध प्रकार के योगदान का उल्लेख प्रायः नगण्य है, अपितु कुछ भ्रामक, सदोष या अधूरे विवरण अवश्य देखने को मिल जाते हैं।

यहाँ यह उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि अब से प्रायः ५० वर्ष पूर्व से ही हमारे पिता डा० ज्योति प्रसाद जी जैन भारत के इतिहास के पुनर्निर्माण हेतु जैन स्रोत-सामग्री का उपयोग करने में प्रयत्नशील रहे थे। उन्होंने अन्य परम्पराओं के साथ जैन साहित्य व अभिलेखों में उपलब्ध तथा जैन अनुश्रुतियों में संरक्षित साक्ष्यों का मिलान, परीक्षण और तर्कसंगत विवेचन करके प्राचीन भारत के इतिहास की कई जटिल गुत्थियों को सुलझाने तथा कतिपय घटनाओं की विवादित तिथियों को निर्णीत करने का महत्वपूर्ण कार्य किया था (दृष्टव्य The Jaina Sources of the History of Ancient India, १९६४ ई०)। जैन स्रोत-सामग्री का अन्य सामग्री

के साथ सन्तुलित, समन्वयात्मक उपयोग करते हुए **भारतीय इतिहास : एक दृष्टि** (प्रकाशित १९६१) में उन्होंने प्राचीनतम काल से स्वतन्त्रता प्राप्ति पर्यन्त सम्पूर्ण भारतवर्ष का क्रमबद्ध इतिहास भी संग्रथित किया था।

आज देश में अनेक जैन-विद्या शोध-संस्थान कार्यरत हैं, कई विश्वविद्यालयों में जैन पीठ भी स्थापित हैं तथा सैकड़ों की संख्या में जैन विषयों को लेकर डाक्टरेट उपाधिधारी भी विद्यमान हैं, किन्तु इतिहास के क्षेत्र में इस दृष्टि से आगे कार्य करने का, जहाँ तक हमारी जानकारी है, कदाचित् ही कोई प्रयास हो रहा है।

उपलब्ध जैन सामग्री, जिसका भारत के इतिहास के पुनर्लेखन में सन्तुलित दृष्टि से लाभप्रद उपयोग किया जा सकता है, को स्थूल रूप से निम्नवत वर्गीकृत किया जा सकता है :—

(क) विभिन्न प्राचीन एवं अर्वाचीन भारतीय भाषाओं में जैनधर्मानुयायियों द्वारा समय-समय पर निबद्ध और अब उपलब्ध ऐसा साहित्य जिसमें प्रतिपाद्य विषय के साथ-साथ तत्कालीन प्रमुख सामाजिक व राजनैतिक घटनाओं, महत्वपूर्ण सांस्कृतिक गतिविधियों तथा उल्लेखनीय धार्मिक कार्यकलापों को संजोया गया हो; काल-क्रमानुसार वंशावलियां आदि दी हुई हों; तथा जिनसे क्षेत्र और काल के अनुसार जन-जीवन पर प्रकाश पड़ता हो।

(ख) ग्रन्थ प्रशस्तियां—जिनमें प्राय: ग्रन्थ समापन की तिथि, स्थान, तत्कालीन शासक या आश्रयदाता का नाम आदि महत्वपूर्ण सूचना रचनाकार के स्वयं के परिचय तथा उसकी गुरु-परम्परा के साथ दी हुई होती है।

(ग) जैन साधु संघों से सम्बन्धित विभिन्न पट्टावलियां और गुर्वावलियां।

(घ) शिलालेख, दानलेख और मूर्तिलेख।

(ङ) संरक्षित अनुश्रुतियां।

(च) जैनों की विशिष्ट कला-सम्पदा।

(छ) प्रकीर्ण एवं स्फुट सामग्री।

आशा है, जैन-विद्या शोध-संस्थानों से जुड़े और इतिहास के क्षेत्र में रुचि रखने वाले सुधि विद्वद्जन इस ओर ध्यान देंगे। ★

विचार बिन्दु

वैदिक साहित्य में सामाजिक चेतना*

–डा० (श्रीमती) अलका अग्रवाल

[जैन धर्म के अनुयायी प्रायः इस एकांगी मानसिकता से ग्रस्त हैं कि समाज में सदाचार (सप्त व्यसनों को त्याज्य मानना) और सद्‌भाव (अपरिग्रह तथा अनेकान्तवाद को क्रमशः आर्थिक विषमता दूर करने और विचारों में सहिष्णुता लाने का उपाय मानना) मात्र जैन धार्मिक-दार्शनिक चिन्तन की विशिष्टता है। वास्तव में यह सम्पूर्ण भारतीय धार्मिक-दार्शनिक चिन्तन का सार है। भारत के जैनेतर साहित्य और चिन्तन में इसके क्या सन्दर्भ हैं उन्हें भी जानना एक व्यापक समीचीन दृष्टि के लिये अभीष्ट है।–सम्पादक]

विश्व साहित्य के सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थों के रूप में वेदों का स्थान नितान्त गौरवपूर्ण है। भारतीय संस्कृति के तो ये मूलाधार ग्रन्थ हैं। हिन्दुओं के आचार-विचार, रहन-सहन तथा धर्म-कर्म को भली-भाँति समझने के लिए वेदों का ज्ञान विशेष रूप से आवश्यक है। वैदिक साहित्य के अनुशीलन से तत्कालीन सुव्यवस्थित, सुसभ्य, सुसंस्कृत तथा सुशिक्षित समाज का परिचय मिलता है।

ऋग्वेद के दशम मण्डल के 'पुरुष सूक्त' में विराट् पुरुष के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जंघाओं से वैश्य और पैरों से शूद्र की उत्पत्ति बताई गई है। समाज की संरचना के आवश्यक तत्त्व हैं—बुद्धि, रक्षण शक्ति, भरण-पोषण की सामर्थ्य, और श्रम शक्ति। तदनुसार ही क्रमशः चतुर्वर्णों का विभाजन भी है। गुणानुसार कार्य निर्धारण आज के समाज में भी है, परन्तु अब यह जन्म की आकस्मिकता पर आश्रित नहीं है वरन् मनुष्य की योग्यता और क्षमता उसके व्यवसाय को चुनने में सहायक हैं। मूल वैदिक विचारधारा भी ऐसी ही रही प्रतीत होती है जो कालान्तर में रूढ़िग्रस्त हो गई। 'पुरुष सूक्त' में विराट् पुरुष या महामानव की कल्पना एक

---

* १३ अप्रैल, १९९७, को आकाशवाणी छतरपुर से संस्कृत में प्रसारित वार्ता का हिन्दी रूपान्तर।

आवयविक समाज संरचना (functional social organisation) की सूचक प्रतीत होती है।

वेदकालीन समाज पितृमूलक (patriachal) समाज था। पिता ही घर का स्वामी व नेता होता था। परन्तु गृहस्थी में नारी का बड़ा महत्त्व था। 'जायेदस्तम्', अर्थात्, 'गृहिणी ही घर है', की भावना, ऋग्वेदीय युग में प्रौढ़ता को प्राप्त कर चुकी थी। स्त्री सहधर्मिणी थी और उसके बिना धार्मिक कृत्यों का अनुष्ठान सम्पन्न नहीं होता था।

कन्याओं को सुयोग्य वधु के रूप में परिणत करने के लिये उदार शिक्षण की व्यवस्था थी। इसी उदार शिक्षा का प्रभाव था कि वेद के मन्त्रों का दर्शन करने वाली 'ऋषिकाओं' के उल्लेख भी हमें ऋग्वेद के अनुशीलन से प्राप्त होते हैं।

वैदिक साहित्य में कतिपय सामाजिक कुरीतियों का भी संकेत मिलता है, यथा—दशम् मण्डल के चौंतीसवें सूक्त में द्यूतक्रीड़ा को निन्दनीय बताया गया है; अनुदार मन वाले व्यक्तियों की भर्त्सना भी वेदों में मिलती है और उदारता रहित प्रदत्त अन्न को विष के समान बताया गया है।

वैदिक साहित्य में दानशीलता को सामाजिक सम्पत्ति के वितरण का एक उपाय बताया गया है। सृष्टि में असमानता स्वाभाविक है—हमारे दोनों हाथ एक से हैं, परन्तु उनकी शक्ति एक-सी नहीं है। गौ की दो बछिया भी एक समान दूध नहीं देतीं। एक साथ उत्पन्न दो भ्राता भी एक समान बलवाले नहीं होते। एक वंश वाले दो व्यक्तियों में एक दानशील और एक कृपण होता है। इसीलिए जिसके पास कम है वह अधिक वाले के पास माँगने जाता है; प्रकारान्तर से जिसके पास यथेष्ट है उसका दायित्व बनता है कि वह अभावग्रस्त को सहारा दे।

वस्तुतः भारतीय चिन्तन परम्परा में सामाजिक सामंजस्य का महत्त्व प्रारम्भ से ही रहा है। वैदिक साहित्य में उक्त दृष्टान्त इसके उदाहरण हैं। जैन और बौद्ध विचारधारा में, एवं चार्वाक विचारधारा में भी, व्यवहार पक्ष में सामाजिक सामंजस्य पर आग्रह रहा है। ★

पर्यावरण और जीव दया

दया भाव (Compassion)—संविधान की अपेक्षा*

—श्री कैलाश भूषण जिन्दल

विख्यात विधि-वेत्ता नानी पालकीवाला अपनी पुस्तक **सब धर्मों की मूल एकता** में लिखते हैं—

"प्राचीन भारतीय संस्कृति और आजकल के अन्य धर्मों का सार हमारे ऋषियों ने पाँच आदर्श शब्दों में रख दिया है—सत्य, धर्म, शान्ति, प्रेम और अहिंसा। इन पाँच आदर्श शब्दों का अंग्रेजी में कोई पर्यायवाची नहीं है। इन पाँच शब्दों के अन्तर्निहित भाव को आजकल की कोई अन्य भाषा व्यक्त करने में असमर्थ है। अहिंसा दूसरे का अनिष्ट या वध न करने तक सीमीत नहीं है। अहिंसा के पालन में आपको प्राणियों में तादात्मय स्थापित करना होगा। आप में और अन्य मनुष्यों, पशुओं, पक्षियों व वृक्षों के प्रति कोई भेद-भाव नहीं रह जायेगा। १९७९ में सभी प्रायद्वीपों में डा० एल्बर्ट आइन्सटाइन की जन्म शती मनाई गई। इस अवसर पर यू० एस० ए० के विख्यात भौतिक शास्त्री डॉ० जे० रोबर्ट ओपेनहीमर ने कहा—'मानवीय धर्म संकटों के प्रति आइन्सटाइन के दृष्टिकोण को समझने के लिए संस्कृत के **अहिंसा** शब्द के अतिरिक्त और कोई भाषा का शब्द उपयुक्त नहीं है।' "

सब जीवों के प्रति मैत्री भाव रखना चाहिए—इस **बात** को प्रतिपादित करने के लिये किसी प्रतीतिकारिता, आचार संहिता या नैतिक उद्देश्य की आवश्यकता नहीं है। इस सहानुभूति और मैत्री भाव को बयालीसवें संशोधन द्वारा हमारे **संविधान** में मान्यता दी गई है। **संविधान** का अनुच्छेद ५१क (६) कहता है: "भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह प्राणि मात्र के प्रति दया-

---

* **शोधादर्श** २७, २८ व ३१ में उपर्युक्त स्तम्भ के क्रम में, दिल्ली के उप न्यायाधीश श्री सी० के० चतुर्वेदी के ईदगाह की पशुवधशाला को नरेला में स्थापित करने की सरकारी योजना पर प्रतिबन्ध-आदेश के प्रस्तर ८८-९८ से अनूदित।

भाव रखे।" इस अनुच्छेद के अनुसार जो मनुष्य पशु-हत्या करता है, वह संविधान की अवहेलना करता है।

अधिनियमों द्वारा स्थापित वैधानिक सम्बन्धों और उनके प्रशासनिक उद्देश्य की चर्चा करने के पहले, उपर्युक्त विवेचन का सारांश निकालना समीचीन होगा।

अनियन्त्रित पशुवध इतने बड़े पैमाने पर हो रहा है जिससे हमारे पर्यावरण के नाश की सम्भावना है। आदिकाल में मनुष्य पशु का वध अपनी भूख मिटाने के लिए करता था, पर आधुनिक युग में पशु वध की ऐसी कोई मजबूरी नहीं है। आजकल तो पशु वध केवल आर्थिक लाभ के लिए किया जा रहा है। पशु वध तो अब एक व्यापार और अजीविका कमाने का एक साधन हो गया है। माँस-उद्योग अपनी उन्नति के लिए भारतीय संस्कृति को बाधक समझता है। परन्तु सत्य तो यह है कि हमारी सभ्यता और कृषि उद्योग इतनी उन्नति कर गए हैं कि शाकाहारी भोजन का कहीं अभाव नहीं हैं। पशु हत्या तो केवल रस-स्वाद और आखेट के लिए की जा रही है। पीढ़ी दर पीढ़ी बुरे संस्कार चले आ रहे हैं, जो हमारे पर्यावरण के लिए घातक हैं। सारांश में, पशु-वध भोजन के नाम पर किया जा रहा है, भोजन के लिए नहीं।

जहाँ तक पशु और मनुष्य के वैधानिक सम्बन्धों का प्रश्न है, हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि "पर्यावरण" अब केवल कला एवं क्रिया-कौशल का शब्द नहीं है। **पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम,** १९६६, के बाद इसका एक विशेष कानूनी अर्थ है। उपर्युक्त अधि-नियम में "पर्यावरण" की बहुत व्यापक परिभाषा दी गई है जिसके अन्तर्गत मनुष्य और अन्य प्राणियों के पारस्परिक सम्बन्ध भी आते हैं। अतः पशुवध मनुष्यों और पशुओं के सम्बन्धों की अन्योन्य प्रति-क्रिया का संकेन्द्रण करता है। पशुवध पर्यावारिक न्याय सम्मत कार्यकलाप होना चाहिये। हमारे संविधान के बयालिसवें संशोधन अधिनियम ने नागरिकों के पशुओं के प्रति जो कर्तव्य हैं, उन्हें निर्धा-रित कर दिया है। पशुओं को मारना या उनके प्रति दयाभाव रखना,

कोई व्यक्तिगत मत या विचार नहीं रह गया है। इसमें कोई नैतिकता या शीलाचार का प्रश्न नहीं उठता और ना ही व्यक्तिगत अधिमान्यता या स्वच्छन्दता का। यह अब कोई विवादग्रस्त विषय नहीं है। इस पर किसी प्रकार के तर्क-वितर्क की आवश्यकता नहीं है।

जितने भी वैधानिक सम्बन्ध हैं, वे सब एक दूसरे के प्रति कर्त्तव्य या अधिकार के रूप में व्यक्त किये जाते हैं। संविधान में अनुच्छेद ५१क आने के बाद, भारत के प्रत्येक नागरिक का मूल कर्त्तव्य यह बनता है कि वह "प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे"। संविधान हर देश का प्रथम न्याय सम्मत प्रलेख होता है। विधि शास्त्र की भाषा में संविधान को देश का धर्म माना गया है। जितने वैधानिक पदाधिकारी हैं, वह सब शपथ लेते हैं कि वह संविधान की रक्षा करेंगे और उसकी गरिमा को बनाये रखेंगे। संविधान ही वह कसौटी है जिसके आधार पर न्यायपालिका, कार्यपालिका की समस्त कार्यवाही को आँकती है। संविधान के अनुच्छेद ५१-क में प्राणि मात्र के प्रति दयाभाव रखने का जो मूल कर्त्तव्य बताया गया है, वह भारत के नागरिकों और भारत भूमि पर रहने वाले छोटे-बड़े पशुओं के आपसी वैधानिक सम्बन्धों को निर्धारित करता है। युग-युगान्तर से हमारे ऋषियों की मान्यता रही है कि मनुष्य और प्रकृति में सामंजस्य बना रहना चाहिये। इस मान्यता को अब संवैधानिक प्रतिष्ठा मिल गई है। पशु मूक हैं, निस्सहाय हैं, और अपने अधिकार का प्रयोग नहीं कर सकते; इसीलिए उनके अधिकार नागरिकों के कर्त्तव्यों के रूप में अभिव्यक्त किये गये हैं। हमारे संविधान में पशुओं को जो स्थान दिया गया है वह हमारे विधि सम्मत शासन का मूल-स्रोत है। यह पशुओं की न केवल दुर्व्यवहार से रक्षा करता है, अपितु उन्हें मनुष्यों के साथ जीने का समान अधिकार भी देता है। लोक सभा में हुए वाद-विवाद से ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार मोजेज को दस ईश्वरीय आदेश मिले थे, उसी प्रकार संविधान ने नागरिकों पर पशुओं के प्रति कुछ ऐसे कर्त्तव्य

निर्धारित कर दिये हैं जिनका पालन स्वेच्छा से करना होगा, न कि किसी आज्ञाप्ति या न्यायपालिका द्वारा अन्यथा दण्डित होने के भय से। यदि इस कर्त्तव्य का प्रवर्तन किया जाये, तो मनुष्य का मनमानी पशु-हत्या का अधिकार जाता रहेगा—चाहे वह व्यक्तिगत आर्थिक लाभ के लिये हो, या केवल स्वाद और आनन्द के लिये, या यह सोच कर कि पशु अब किसी योग्य नहीं रह गया है।

पशुओं के प्रति आदर और दया-भाव की जो बात संविधान में कही गई है, उसका मन्तव्य यह है कि जिस पशु ने आपके इशारों पर आपकी जीवन भर सेवा की, उसकी आप भी वृद्धावस्था में अशक्त हो जाने पर सेवा करें। पशु को केवल यन्त्र समझना अनुचित है। एक उपकरण के बेकार हो जाने पर आप उसे तोड़-फोड़ कर कबाड़ी को बेच देते हैं। इस प्रकार का पशु के साथ व्यवहार करना अवैध होगा। एक ओर संविधान में मानवीय दया-भाव की बात कही गई है, दूसरी ओर हम पशु को निर्जीव मशीन समझते हैं—यह कैसा विरोधाभास है ?

संविधान ने जब "दया-भाव" को कर्त्तव्य बताया है, तो उसका आशय है कि हम प्राकृतिक वातावरण की रक्षा करें। विदेशी मुद्रा के अर्जन की स्पृहा से आजकल जो अनियन्त्रित नृशंस हत्या हो रही है, उसका पर्यावरण पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है।

चैम्बर्स ट्वेन्टीअथ सेन्चुरी डिक्शनरी में compassion शब्द के कई अर्थ दिये गये हैं—सहानुभूति, दूसरे की यातना पर खेद, करूणा, दया भाव। संविधान के अनुच्छेद ५१क (छ) में "कम्पैशन" का अनुवाद "दयाभाव" किया गया है। "दयाभाव" (mercy) का प्रयोग बहुत व्यापक रूप में किया गया है। पशुओं के प्रति की जाने वाली क्रूरता को केवल रोकना इसका अर्थ नहीं है। **पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण अधिनियम**, १९६०, में नियोजित किया गया है कि भोजन के लिये पशु का वध करते समय उसको अनावश्यक पीड़ा या यातना न दी जाए। अन्तिम समय की यह सहानुभूति **संविधान** के "दयाभाव" का न्यूनांश है।

यह हास्यास्पद तर्क है कि पृथ्वी पर पशुओं का भार बढ़ता जा रहा है और वे हरियाली को नष्ट करते जा रहे हैं, इसलिए हत्या करना आवश्यक है। यह तो शासन का उत्तरदायित्व है कि जितनी योजनाएं बनाई जायें, उनमें विकास खण्ड, गांव या शहर के स्तर पर चरागाहों के लिए पर्याप्त स्थान छोड़ा जाये ताकि मनुष्य और पशु का सहजीवन सम्भव हो सके।

संविधान में "दयाभाव" का जो स्वयंसिद्ध कथन है, उसके कुछ स्वाभाविक परिणाम निकलते हैं। पहला, "दयाभाव" का जो कर्त्तव्य है उसको प्रवर्तित करने के लिए राज्य को कुछ अधिनियम पारित करने होंगे। दूसरा, इस कर्त्तव्य-पालन में शासन किसी प्रकार की छूट या ढील नहीं दे सकता। **संविधान** में "दयाभाव" का जो कर्त्तव्य निर्धारित है वह केवल नागरिकों पर लागू नहीं होता अपितु शासन और राज्य पर भी लागू होता है। **संविधान** के भाग ४ में राज्य की नीति के कुछ निर्देशक तत्त्वों का विवरण है। परन्तु इस भाग के प्रारम्भ में अनुच्छेद ३७ कहता है : "इस भाग में अन्तर्विष्ट उपबन्ध किसी न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं होंगे।" **भाग** ४-क में न्यायपालिका पर ऐसा कोई निषेधात्मक प्रतिबन्ध नहीं है, अतएव न्यायपालिका "दयाभाव" के कर्त्तव्य के पालन के लिये नागरिकों और राज्य को समान रूप से बाध्य कर सकती है। प्रशासनिक अधिकारी **संविधान** की रक्षा करने की शपथ लेते हैं, अतएव **संविधान** में निर्धारित कर्त्तव्यों के पालन की उनसे और भी अधिक अपेक्षा की जानी चाहिये। ★

(पृष्ठ २२० का शेष)

के मन्दिर में उत्कीर्ण जैन मुनियों के उत्पीडन एवं निर्मम वध को दर्शाने वाले भित्ति चित्रों की साक्षी को मध्य युगीन धार्मिक मदान्धता कहकर नकार भी दिया जाए तो आज भी राजस्थान के जालोर, सिरोही, पाली, जोधपुर आदि जिलों में अनोप मण्डल जैसे संगठन सक्रिय हैं जो अपने को जैन धर्म विरोधी कहलाने में गौरवान्वित होते हैं। The Pioneer (२१-९-९७) ने इस संगठन को

"A social Organization with strident anti Jaina rhetoric" लिखा है। यह अनोप मण्डल भी वृहत्तर हिन्दू समाज की उसी तरह एक इकाई है जैसे कि श्री वैरागी। अभी सितम्बर १९९७ की घटना है कि भीनमाल (जिला जालोर) में एक ३७ वर्षीया जैन महिला के साथ बलात्कार के आरोप में एक जैन (श्वेताम्बर) मुनि लोकेन्द्र विजय को पुलिस (श्री हेमन्त प्रियदर्शी, पुलिस अधीक्षक, के नेतृत्व में) रात्रि में उपाश्रय से पूछताछ के लिए थाने ले गई। पुलिस द्वारा किये गये दुर्व्यवहार से खिन्न होकर मुनिश्री ने उपाश्रय लौटने पर तेजाब पीकर १० सितम्बर को आत्म हत्या कर ली। पुलिस के दुर्व्यवहार से जैन समाज को क्षोभ होना स्वाभाविक था तथा उन्होंने शान्ति पूर्ण प्रदर्शन के द्वारा पुलिस अधीक्षक को हटाने तथा उसके विरुद्ध समुचित कार्यवाही की मांग की। राजस्थान विधान सभा में भी यह मांग उठाई गई तथा मुख्य मन्त्री जी ने १२ सितम्बर को मांग स्वीकार करते हुए पुलिस अधीक्षक को निलंबित करते हुए सम्पूर्ण प्रकरण की मण्डलायुक्त द्वारा जांच के आदेश दे दिये। बस जैनों के विरुद्ध आक्रोश भड़काने के लिये इतना काफी समझा गया। अनोप मण्डल और राष्ट्रीय जनता दल के नेताओं की अगुवाई में ५००० की भीड़ ने पुलिस अधीक्षक की बहाली की मांग का बहाना लेकर जो नंगा नाच किया उससे वैरागी जी जैसे वृहत्तर हिन्दू समाज के सहृदयों का मस्तक शर्म से झुक जाना चाहिए। उपद्रवी गुण्डा तत्वों ने भीनमाल सहित समूचे जालौर जिले में आतंकवाद की आग लगा दी। १४ सितम्बर को बन्द रखकर जालोर नगर में (जो भीनमाल से ७२ कि० मी० की दूरी पर है) सामान्य जन जीवन ठप कर दिया गया तथा आतंकवादी भीड़ ने एक उपाश्रय व एक जैन छात्रावास में तोड़-फोड़ की, जैनियों के एक निजी अस्पताल व तीन दवाई की दुकानों को लूट लिया गया, एक कार में आग लगा दी गई, जैन परिवारों के घरों पर पत्थर फेंके गए तथा सुप्रसिद्ध जैन (श्वेताम्बर) मन्दिर श्री नन्दीश्वर द्वीप, जो कलेक्टरेट आफिस के सामने ही है, में घुसकर उसे बुरी

तरह क्षतिगस्त कर दिया गया तथा मूर्तियों को तोड़-फोड़ कर इधर उधर बिखरा दिया गया। भीनमाल में भी भारी लूटपाट की गई। उपद्रवियों की गुण्डागर्दी तथा उत्पात की गम्भीरता को देखकर प्रशासन को जालोर में कर्फ्यू लगाना पड़ा तथा स्थानीय पुलिस की निष्क्रियता के कारण सेना को शान्ति व्यवस्था के लिये बुलाना पड़ा, और भीनमाल में सेना का मार्च पास्ट कराना पड़ा। १५ सितम्बर को निकटवर्ती जिले सिरोही, पाली व जोधपुर में भी बन्द रखा गया।

एक दूसरी हाल ही की घटना गलियाकोट (सागवाड़ा, राजस्थान) की है जहां दिगम्बर जैन मन्दिर के भण्डार में रखे ७००-८०० वर्ष प्राचीन कलात्मक रथों को गुंडई तत्त्वों ने आग लगा दी तथा रथों में लगी कलात्मक मूर्तियों को चुरा कर ले गये।

अभी कुछ महीने पहले राजस्थान में ही विहार करती हुई एक जैन साध्वी का अपहरण कर लिया गया था। जैन सन्तों के साथ मारपीट की तो कई घटनाएं पिछले कुछ महीनों में मध्य प्रदेश व राजस्थान में हो चुकी हैं।

इस शती के प्रारम्भ की कुछ दशाब्दियों तक जैनेतर समाज के विरोध के कारण जैनों की रथयात्रा नहीं निकलने दी जाती थी। और यह तो हमारे स्वयं की देखी बात है कि अब से ५०-५५ वर्ष पूर्व लखनऊ जैसे धार्मिक सहिष्णुता के लिये सुप्रसिद्ध नगर में जैनों की रथयात्रा निकलते समय जैनेतर समाज के लोग विरोध में अपनी दुकानें बन्द रखते थे। और यह तब है जबकि जैन समाज का धनिक वर्ग जैनेतर समाज की रथयात्राओं और अन्य धार्मिक आयोजनों में खुल कर सहयोग व चन्दा देता है।

ऐसे ही सब कारणों से तथा हिन्दू समाज में कतिपय घोर असहिष्णु एवं कट्टरवादी तत्त्वों के मौजूद रहने के कारण जैन समाज के सर्वमान्य नेता गण जैन धर्म एवं संस्कृति की रक्षार्थ तथा उसकी स्वतन्त्र पहचान बनाये रखने के लिये जैनों को बौद्धों व सिखों के समान धार्मिक अल्पसंख्यक समुदायों की सूची में रखे जाने की मांग करते रहे हैं। इससे वृहत्तर हिन्दू समाज से जैनों के सम्बन्ध खराब होने की आशंका निर्मूल है, इसे अलगाववादी प्रवृत्ति का रंग देना भ्रामक है, और जैनों के विरुद्ध कुत्सित प्रचार करना है।

—अजित प्रसाद जैन

चिन्तन कण

नास्तिक क्यों ?

—डा० शशि कान्त

[प्रस्तुत विचार ३० वर्ष पहले लेखबद्ध किये थे। तब मैं प्रौढ़ावस्था में प्रवेश कर रहा था और अब वरिष्ठ नागरिकों की पांत में आ गया हूँ। इस बीच जो देखा-समझा उससे इस विचारणा की सम्पुष्टि हुई, अतः अपने चिन्तन को प्रबुद्धजनों से बाट लेने की इच्छा हुई। **शोधादर्श**-१० में पृ० ४८-५३ पर 'धर्म : आडम्बर और यथार्थ' तथा **शोधादर्श**-२८ में पृ० १४-१५ पर 'मानव धर्म : प्रास्ताविक' के अन्तर्गत प्रकाशित विचार भी प्रासंगिक हैं।]

पिछले दिनों अनायास ही एक मित्र के सौजन्य से मुझे महात्मा गांधी की आत्मकथा पढ़ने का सुयोग मिला। संस्करण हिन्दी में था, भाषा प्रवाहपूर्ण, शैली रोचक और विषय गांधी जी के सत्य के साथ किये गये उनके प्रयोगों से सम्बन्धित था, अतः पढ़ने में विशेष रस आया। गांधी जी के निधन के समय मैं बहुत बच्चा न था, अतः उनके दर्शन न कर पाने का दुःख कभी-कभी होता है परन्तु मात्र दर्शन से मुझे सन्तोष होता, इसमें कुछ सन्देह है, और जो कुछ मेरे बाल्यकाल में उनकी छवि बन चुकी थी तथा जैसा कुछ उनकी जीवनी पढ़ने से उनके मिलने-बोलने के विषय में मैं समझ पाया हूँ, उससे दर्शन मात्र से ही सन्तोष कर लेने से अधिक और कुछ का सुभीता होने की कतई गुंजाइश नहीं थी, इसलिये वह दुःख सालता नहीं।

यदि यही पुस्तक मैंने अपनी युवावस्था के ऊर्ध्वकाल में पढ़ी होती तो शायद उसका प्रभाव दूसरा होता। अब बहुत सी बातें गले नहीं उतरतीं। गांधी-भक्तों को यह प्रिय नहीं लगेगा, परन्तु यह कुछ उनके प्रति मेरे मन में अनादर के कारण नहीं है वरन् उनके प्रिय सत्य के प्रति आग्रह ही इसमें हेतु है।

मैं जन्मतः जैन हूँ अतः मुझे जैन धर्म में श्रद्धा होनी चाहिये, जैन पौराणिक आख्यानों में आस्था होनी चाहिये और शास्त्र-सम्मत

जैन आचार एवं पूजन-दर्शन विधि का पालन करना चाहिए, यह अपेक्षा मुझ से साधर्मी करते हैं। यह उनके लिये कदाचित् स्वाभाविक है। गांधी जी के विचार से भी यह उचित होता यदि मैं उनकी विचार धारा को स्वीकार कर लेता, यह बात दूसरी होती कि वे मेरे मान-स्तर की अपेक्षा से कुछ छूटें दे देते जैसा कि अन्य धर्माचार्यों ने भी किया है।

परन्तु मैं व्यक्ति-रूप से इस स्थिति को स्वाभाविक नही मान पाता। मुझे उतना ही ग्रहण करना यथेष्ट है जितना कि मेरी अल्प बुद्धि सही समझने में सक्षम है और मेरी चेतना को सह्य है। बुद्धि एवं चेतना को किसी गड्ढे, कुयें, बावड़ी या तालाब में, यहां तक कि समुद्र में भी, बांध कर रख देने के पक्ष में मैं नहीं हो पाता। मैं नहीं मानता कि किसी माता-पिता, गुरू-आचार्य, तीर्थंकर-पैगम्बर को व्यक्ति की चेतना को बांध देने का अधिकार है। एक मित्र बड़े सरल हृदय श्रद्धालु रामायणी थे, उन्होंने अपनी सन्तान को रामायण से बांध देने का निश्चय किया था, जिसे मैं बच्चों के प्रति न्याय तो नहीं ही मान सका। कुछ मुसलमान मित्रों से कभी-कभी बातचीत हुई तो उन्होंने बताया कि पैगम्बर की और उनके तथाकथित इल्हामी बयानों की शान में कुछ भी कहना कुफ्र है; ऐसा मालूम हुआ कि वे किताब से बंधे हैं और मुझे उन पर तरस ही आया।

प्रचलित मानदण्डों के अनुसार मैं नास्तिक समझा जाऊँ तो आश्चर्य नहीं। मुझे उसमें आपत्ति भी न होगी, तो भी मैं बताना चाहूँगा कि यदि कोई मुझे मात्र जिज्ञासु माने तो मुझे अधिक आनन्द होगा। अधार्मिक भी मुझे कहा जा सकता है, उसे मैं गाली नहीं मानूंगा, मुझे तो अनैतिक होना खलेगा। इतना और निवेदन कर दूँ कि नैतिकता मनुष्य को मनुष्य मानने में है, उसे पत्थर बना देने में नहीं - वह हाड़-मांस का पुतला है जिसमें एक धड़कता हुआ दिल है अत: उसमें कमजोरी होना स्वाभाविक है जिसे वह संवेदना, सहिष्णुता और विचारशीलता जन्य विवेक से दूसरों के लिये क्लेष-कारी न हो, ऐसा बनाने का प्रयास करता है और ऐसा प्रयास एवं

उसके प्रति सतत जागरूकता ही सच्ची नैतिकता है। जो नैतिकता में पूर्णत्व या विशुद्धत्व का आरोप करते हैं, वे अन्ततः मनुष्य को देवत्व प्रदान करने के व्यामोह में पाषाणत्व का बाना दे बैठते हैं क्योंकि वैसी पूर्णता पत्थर में ही सम्भव है।

जैन, बौद्ध, शैव, वैष्णव, ईसाई, पारसी, मुसलमान, सिख आदि केवल धार्मिक लेबुल हैं। किसी समय वे सामाजिक संगठन की भी बुनियाद थे और बहुत अंशों में अब भी हैं जिससे उनका राजनैतिक महत्व भी बन जाता है। यह स्थिति हमारे देश के लिये, व्यापक दृष्टि से विश्व के लिये भी, भयावह है। शुद्ध धर्म करूणा-परक सेवाश्रित नैतिक-व्यवहार-समन्वित मानवता में निहित है जो सभी धर्मों का आधार है, परन्तु लेबुल के बन्धन में हम उसे भुला देते हैं और कुछ चालाक एवं वाचाल लोगों के बहकावे में आकर भुलावे में झूलते रहते हैं जो उससे अपना अर्थ-साधन कर लेते हैं।

आस्था का मनुष्य के जीवन में कुछ स्थान अवश्य है। उसकी एक कमजोर नस आस्था के वश में रहती है। आस्था के रूप को परिष्कृत करने और शुद्ध धर्म से उसका तादात्म्य स्थापित करने की आवश्यकता है, परन्तु मात्र उसके लिये ही लेबुल बदलने की कोई आवश्यकता नहीं है। कुछ दिन हुए एक अमरीकन युवती ने जैन धर्म के प्रति अपनी जिज्ञासा और रूचि प्रकट करते हुए अपने को जैन मत में दीक्षित होने की इच्छा व्यक्त की थी। उसकी जिज्ञासा एक मित्र के माध्यम से मेरे सामने आई। मैंने तो उसे यही सलाह दी कि वह लेबुल बदलने का विचार त्याग दे। उसके बाद भी हमारे बीच कई पत्रों का आदान-प्रदान हुआ जिससे मैं यही समझ सका कि उसे मेरी सलाह अरूचिकर नहीं लगी। [इसके बाद भी ब्रिटेन के एक अंग्रेज युवक ने जैन लेबुल अपनाने की इच्छा व्यक्त की। पत्र-संवाद से विदित हुआ कि उसकी रूचि धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन में है और वह जैन दर्शन के कुछ पक्षों के प्रति आकृष्ट हुआ है। मेरी सलाह यही रही कि उतने भर के लिये लेबुल

लगाने की आवश्यकता नहीं है। सब धर्मों के प्रति समदर्शिता प्रदर्शित करने वाले और हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रति समर्पित गांधी जी ने भी अपने ज्येष्ठ पुत्र के इस्लाम धर्म में परिवर्तित होकर 'अब्दुल्ला गांधी' नाम रख लेने पर अपनी मनोव्यथा व्यक्त की थी।

इधर कुछ दिनों से एक अमरीकी सज्जन माइकल टॉबयस ने प्रचारित करना शुरू किया है कि "मैं जैन हूँ; मैंने पांच महाव्रत ग्रहण किये हैं" (देखें, **तीर्थंकर**, अगस्त १९९७, पृ० २)। उन्होंने दावा किया है कि उन्होंने जैन धर्म का गहन अध्ययन किया है और विदेशियत के व्यामोह में कुछ जैनों ने उन्हें हाथों-हाथ लिया है। परन्तु जिसे **महाव्रत** का अर्थ ही नहीं मालूम कि ये साधु के लिये निर्धारित हैं जबकि गृहस्थ के लिये **अणुव्रत** का प्राविधान है, उनका अपने को **जैन** घोषित करना किसी दुरभि सन्धि की गन्ध देता है। इन सज्जन के सम्बन्ध में **शोधादर्श**-१९ के पृ० ६९-७३ पर संवीक्षा भी अवलोकनीय है।]

लेबुल रूपी धर्म का मोह कितना थोथा है यह इससे भी जान पड़ा कि अक्सर जैन लड़कियां वैष्णव परिवारों में ब्याह कर जाती हैं और उनका आचरण शुद्ध वैष्णवी का हो जाता है। इसी प्रकार वैष्णव परिवार की लड़कियां जैन कुल में आकर **जैन आचार** का पालन करने लगती हैं। गोद लिये गये बच्चे भी जिस कुल में गोद जाते हैं उसके धर्म का अनुगमन करने लगते हैं।

फिर भी तबलीग, conversions और धर्म परिवर्तन का इतना प्रचार क्यों? यह मात्र राजनैतिक शक्ति संचयन का एक उपाय है और या फिर व्यक्तिगत शक्ति संवर्धन का एक साधन है। ऐतिहासिक काल में जो सामूहिक या व्यक्तिगत धर्म परिवर्तन प्राय: होते रहे हैं वे विवशता या बाध्यता के परिणाम हैं, लालच भी उन में हेतु रहा है और कभी-कभी प्रतिशोध की भावना भी अन्तर्निहित रही है जैसे कि डा० भीमराव अम्बेडकर के नेतृत्व में अनुसूचित जातियों के कुछ लोगों का सामूहिक रूप से अपने को बौद्ध धर्म का अनुयायी घोषित करना। धर्म परिवर्तन (conver-

sion) का निष्ठा (conviction) से शायद ही कोई सम्बन्ध है।

एक धर्म दूसरे से अच्छा है, एक मत दूसरे से श्रेष्ठ है, ईश्वर, वेद या आत्मा में विश्वास ही आस्तिकता है, आदि विचार शुद्ध धर्म की दृष्टि से तो हेय हैं ही, व्यवहारिक दृष्टि से भी अवास्तविक हैं, और जब मनुष्य मात्र में इतनी समझ आ जायेगी तो उसका धर्म या सम्प्रदाय विशेष, ग्रन्थ विशेष, मान्यता विशेष और धर्माचार्य विशेष के प्रति मोह जाता रहेगा और लेबुल सम्बन्धी कदाग्रह मिट कर उसमें सदाचार, शालीनता एवं सद्भाव की प्रवृत्ति जड़ पकड़ लेगी तथा स्थानीय, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वैमनस्य एवं शोषण का जो बोलबाला दीख पड़ता है वह धीरे-धीरे समाप्त हो जायेगा। अत: यदि धार्मिकता का आशय किसी धर्म-विशेष के लेबुल से बंधे होना है और आस्तिकता किसी के प्रति चाहे वह ईश्वर हो, वेद हो, धर्म-ग्रन्थ हो या व्यक्ति विशेष हो, अन्ध श्रद्धा तथा धर्म प्रचारकों का अन्धानुकरण है, तब मैं यही कहूँगा कि लोग बड़ी संख्या में अधार्मिक और नास्तिक हो जायें—अर्थात्, खुले मस्तिष्क से सोचने लगें और व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में सदाचार (morality), शालीनता (decency) व सद्भाव (harmony) की ओर प्रवृत्त हो जायें—तो उससे मानव जाति का कल्याण ही होगा।

जिस प्रकार धर्म के लेबुल और धर्म के यथार्थ में ताल-मेल नहीं है, उसी प्रकार साधु का वेश और साधुत्व भी अलग चीज़ें हैं। वेश धारण करने पर व्यक्ति वृत्तिक (professional) हो जाता है और वह वे सब हथकण्डे अपने व्यवसाय के हित साधन के के लिये जो कि बड़े उद्योग-धन्धे (big business) अपने विशिष्ट उत्पादन (brand) को अधिक से अधिक बिकाऊ बनाने (sales promotion) के लिये अपनाते हैं, व्यवहार में लाता है। उसकी तपस्या और वैराग्य (asceticism) भी प्रदर्शनकारिता का अंग बन जाता है। जिसमें साधुत्व है वह उसका प्रदर्शन नहीं करेगा, उसका सभी व्यवहार सहज होगा, आचरण में शिष्टता और शालीनता

होगी, स्वभाव में शान्ति और सन्तोष होगा, और उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व एक प्रकार के सौन्दर्य, बोध से परिवेष्टित होगा जो शरीर से भी स्वच्छ होगा, मन से भी स्वच्छ होगा और उसका परिवेश भी स्वच्छ होगा। यही एक सुसंस्कृत व परिष्कृत जीवन शैली का परिचायक है। फिर वह किसी भी धर्म के लेबुल से जाना जाता हो, कोई भी व्यवसाय छोटा या बड़ा करता हो, कैसी भी सामाजिक प्रास्थिति में हो, कुछ भी उसकी औपचारिक योग्यता हो—वह मेरे लिये सम्मान का, आदर का और निष्ठा का पात्र होगा। उसकी सूझ-बूझ, विद्वत्ता या ज्ञानधर्मिता, और ईमानदारी मेरे लिये स्पृहणीय, गृहणीय और प्रेरणास्पद होंगे। इसीलिये विश्व भर में प्रबुद्ध वर्ग धर्म के बजाए धार्मिकता और साधु के बजाए साधुत्व की ओर आकर्षित होता रहा है—

> काफ़िर[1] हूं ना मोमिन[2] हूँ, महज़ इन्सान हूँ।
> इख़लाक़[3] से है वास्ता मेरा, और मंज़िल आमीन[4] है।

और उसका मानना है—

> हिन्दू हूँ, मुस्लिम हूँ या कि ईसाई हूँ
> जैन हूँ, बुद्ध हूँ या कि सिख हूँ।
> रोज़ा-नमाज़ या कि पूजा करता हूँ,
> बुत परस्त हूँ या कि ना-बुत हूँ।
> ये सब लेबुल हैं तफ़रक़ात[5] के
> और रुकावटें हैं इन्सानी इख़लाक़ के।

——

1. नास्तिक 2. आस्तिक 3. शिष्ट आचार 4. शान्ति 5. भेदभाव

जिज्ञासा

सांगली (महाराष्ट्र) के श्री शान्तिलाल के० शहा एक चिन्तनशील स्वाध्याय-प्रेमी निष्ठावान वयोवृद्ध श्रावक हैं। उनकी कुछ जिज्ञासायें यहाँ दी जा रही हैं। हमारा आग्रह है कि हमारे सुधि पाठक इन प्रश्नों पर धर्म-ग्रन्थों तथा स्व-चिन्तन के आधार से अपने विचार संक्षेप में भेजने की कृपा करें।

(१) जिन शासन में तीर्थंकरों की संख्या २४ बताई गई है। तीर्थंकर २४ ही क्यों? २३ क्यों नहीं? २५ क्यों नहीं?

(२) जिन शासन में सभी तीर्थंकर क्षत्रिय कहे गये हैं, ऐसा क्यों? तीर्थंकर कोई भी ब्राह्मण नहीं है अथवा वैश्य नहीं है, ऐसा क्यों?

(३) जैसा कि वेदान्त दर्शन में बतलाया गया है कि ब्रह्मविद्या क्षत्रियों के पास थी, जैन दर्शन में वैसा ही है। इसका कारण क्या?

(४) सभी तीर्थंकर क्षत्रिय और उनके सभी गणधर ब्राह्मण बतलाये गये हैं। इसका कारण क्या है? अधिसंख्य आचार्य भी ब्राह्मण हुए और यह परम्परा कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्र तक तो चलती ही रही।

(५) विश्व अनादि-अनन्त है, ऐसा हमारे दर्शन में है। अब विज्ञान ने सिद्ध किया है कि विश्व प्रसरणशील है—प्रसरता है, और सौरमण्डल के साथ ग्रहों के संघर्ष होने के पश्चात् विश्व का विलय हो जायेगा। इसका मेल कैसे होता है? (सौर मण्डल में बहुत सी आकाशगंगायें हैं और हरेक आकाशगंगा में कोटि-कोटि ग्रह हैं।)

(६) तीर्थंकर सर्वज्ञ त्रिकालज्ञानी-त्रिलोकज्ञानी होते हैं जबकि केवली सिर्फ त्रिलोकज्ञानी होते हैं। ऐसा फर्क क्यों?

(७) पुनर्जन्म सम्बन्धी प्ररूपणा सिर्फ तीर्थंकर भगवान ही करते है, केवली भगवान नहीं करते। ऐसा क्यों? कोई कारण है?

(८) केवलदर्शन पहले होता है अथवा केवलज्ञान पहले होता है? क्या श्वेताम्बर और दिगम्बर मान्यता में कोई फर्क है, और यदि है तो क्यों?

(९) केवली-भगवान केवलज्ञान होने के बाद बहुत थोड़े वर्ष जीवित रहते हैं, परन्तु तीर्थंकर भगवान का केवलज्ञान होने के बाद आयुष्य लम्बा होता है। ऐसा क्यों?

(१०) सभी आराओं सुषमा-दुषमा इत्यादि में तीर्थंकरों की संख्या २४ ही होती है। क्या यह अवतारवाद नहीं है? ★

साहित्य सत्कार

आचार्य समीक्षा—ले०-मुनि श्री सरल सागर जी; प्रकाशक-ब्र० हीरालाल खुशालचन्द दोषी, जैन ग्रन्थ माला, मु० पो० मांडवे (सोलापुर)-४१३१११; द्वितीय संस्करण १९९६; पृष्ठ १११; मूल्य स्वाध्याय

चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर महाराज द्वारा इस शती के पूर्वार्ध में उत्तर भारत में पुनर्प्रतिष्ठापित दिगम्बर जैन आचार्य-मुनि परम्परा में तेजी से पनपी विकृतियों एवं समाचारी में आई गिरावट से मुनि श्री सरल सागर जी बड़े व्यथित हैं। दिगम्बर जैन आम्नाय में स्वामी वट्टकेर आचार्य द्वारा अब से साधिक २००० वर्ष पूर्व आचारांग आगम के सार रूप में निबद्ध **मूलाचार** ग्रन्थ में निर्धारित श्रमणाचारी को वे आज भी उतना ही प्रासंगिक मानते हैं तथा यथा-शक्य उसका पालन करने में विश्वास रखते हैं। प्रस्तुत कृति के पूर्व मुनि श्री की दो अन्य कृतियां—**नग्न समीक्षा** तथा **पंचकल्याण-गजरथ समीक्षा** भी प्रकाश में आ चुकी हैं। **नग्नत्व समीक्षा** में उन्होंने वर्तमान में अनेक दिगम्बर जैन मुनियों में पनप रहे शिथिलाचार को उजागर करते हुए उस पर तीखा प्रहार किया है। **शोधादर्श**-३० के सम्पादकीय लेख में (पृष्ठ २२७-२३२ पर) हमने उस कृति की समीक्षात्मक विवेचना की है।

प्रस्तुत कृति **आचार्य समीक्षा** में मुनि श्री ने आज के अनेक **दिगम्बर जैन** आचार्यों में परिलक्षित हो रही विकृतियों को उजागर किया है जो उनकी स्वयं की व्यक्तिगत जानकारी तथा निजी अनुभव पर आधारित हैं। ग्रन्थ तीन अध्यायों में विभक्त है— (१) आचार्य समीक्षा, (२) आर्यिका समीक्षा, व (३) ब्रह्मचारी समीक्षा, तथा तीनों अध्यायों में लगभग १२२ उपशीर्षक हैं। कुछ उल्लेखनीय उपशीर्षकों तथा उनकी विषय वस्तु का सार निम्न प्रकार है :—

(१) आचार्य समीक्षा : **आचार्य का अस्तित्व**—आचार्य का साधु जैसा अपने आप में **स्वतन्त्र** कोई अस्तित्व नहीं है। साधु में ही विशेष गुण (स्वयं मार्ग पर चलते हुए दूसरों को भी मार्ग दर्शन देना, आदि) का नाम आचार्य है। कुछ गुरू के समाधिस्थ होने पर उनके पट्ट पर आचार्य बनते हैं तो कुछ संघ या समाज से आचार्य पद हथिया लेते हैं।

शिष्यों में स्वछन्दता का कारण—अधिक शिष्य बनाने के लोभ में पात्रता की पूरी जांच के बिना ही दीक्षा दे दी जाती है—ऐसे शिष्य शिथिलाचार वृद्धि का कारण बनते हैं। आचार्यों में प्रतिस्पर्धा बुद्धि से दीक्षाएं बढ़ रही हैं। कुछ आचार्य स्वयं बाह्य आचरण से जितने निर्मल हैं, भावों से कई गुने कलुषित हैं।

चिन्ता का विषय—आचार्य संख्या वृद्धि, **आगम विरुद्ध है पट्टाचार्य परम्परा**, **सबसे अधिक प्रभावक कौन**, आचार्य एक दूसरे से कतराते क्यों हैं, आचार्य या याचक, **बैंक में खाते**—रसीद कट्टा साथ में लेकर घूमने वाले और पैसा बटोरने वाले आचार्य भी मिलते हैं। एक महिला कहती सुनी गई कि जिस परिवार का कोई भी सदस्य मुनि या आचार्य बन जाए तो उस परिवार की अनेक पीढ़ी से चली आई दरिद्रता अभी से दूर हो जाती है। किसी भी संस्था से जुड़े आचार्य आर्त-रौद्र ध्यान से नहीं बच सकते ; आज के कई आचार्य मुनि संस्था के नाम पर निजी फण्ड बना रहे हैं; वर्तमान के कुछ साधुओं में एड़ी से चोटी तक स्वादुता भरी है; समाज सुधार,

क्षेत्रोद्धार, काव्य सृजन में व्यस्त कुछ आचार्यों, साधुओं को महाव्रतों के स्वरूप व अतिचारों पर पूरा ध्यान देने का अवकाश नहीं है। कुछ आचार्य तीर्थ निर्माण एवं जीर्णोद्धार की भावना से ऐसे तीर्थों पर चातुर्मास करते हैं जहां संघ के आहार की व्यवस्था सीमा के बाहर से आए दातारों के माध्यम से ही की जाती है और कहीं कमी पड़ी तो संस्थाओं से।

आचार्य और अवसरवाद, अपना अपराध भी शिष्य के सिर पर, **आचार्य और आडम्बर**—कई आचार्यो को आहार सामग्री से लेकर मोटर गाड़ी, पैट्रोल, ट्यूब टायर, ड्राइवर और अन्य नौकर-चाकरों तक के आहार वेतनादि की व्यवस्था की चिन्ता दिन में तो रहती ही है, रात में भी रहती है।

आचार्य और मूर्ति—कई आचार्य आहार की व्यवस्था के साथ-साथ मूर्तियों को भी लेकर विहार करते हैं और दर्शन अभिषेक देखकर आहार को निकलते हैं। **पंचामृत अभिषेक : हिंसा और अविनय, आचार्य और जीवित भट्टारक परम्परा, आचार्य और पंथ विमोह**—आचार्य सब आगम पंथी होने चाहिएं पर अब वीतरागियों के साथ-साथ उन्हीं के समान सरागी देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना का, पंचामृत अभिषेक, स्त्रियों द्वारा अभिषेक एवं स्पर्श का समर्थन करने वाले अनेक आचार्य हैं।

आचार्य और जन्म जयन्ति, **आचार्य और अभिनन्दन ग्रन्थ, आचार्य और जादू-टोना**—अधिकांश साधुओं एवं ससंघ आचार्यों का उदर पोषण जादू-टोना मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र से अन्ध भक्तों को प्रभावित करने की कला पर निर्भर है। **आचार्य और राजनीति**, आचार्य और अनावश्यक विहार, अनावश्यक तीर्थ यात्रा, व्रति परिसंख्या का दुरुपयोग, व उसकी उपयोगिता, आदि।

(२) **आर्यिका समीक्षा : आचार्यों की दृष्टि में आर्यिका**—ऐसे आचार्यों की संख्या बढ़ रही है जो एक ही आर्यिका को लेकर घूमते रहते हैं। **बड़ा कौन—ऐलक या आर्यिका ?** आर्यिकाएं और तीर्थ निर्माण—अनेक आर्यिकाएं तीर्थ निर्माण और जीर्णोद्धार जैसे

आरम्भ-समारम्भ के कार्यों और उनके लिये पैसा इकट्ठा करने-**करवाने में लगी हैं तो क्या वे उपचार से भी** महाव्रत पाल सकती **हैं ? स्वयं अपने अभिनन्दन ग्रन्थ** लिखवा रही हैं, अपने ही आत्मीय-**जनों व भक्तों से** अपनी प्रशंसा करा कर प्रसन्न होती हैं, मठाधीशों **जैसे एक ही** स्थान पर अधिकतर बनी रहती हैं।

(३) **ब्रह्मचारी समीक्षा**—मात्र स्पर्श इन्द्रिय का त्यागी ब्रह्मचारी माना जाता है। जब से क्षुल्लकों को पिच्छि का विधान हुआ तब से ब्रह्मचारी का पृथक भेष बन गया। अनुभव हीनता के कारण असमय में गृहत्यागी **ब्रह्मचारी या आचार्यों के गुलाम, श्वानवत् गुर्गुरायते**, ब्रह्मचारी हैं या रिश्वत खोर, **ब्रह्मचारी हैं या रईस**। केशलोंच समारोह—प्रभावना या मलत्याग प्रदर्शन, आदि।

तथ्यों के उद्घाटन और श्रावक-वर्ग को जागृत व सावधान करने के सत्प्रयास के लिए मुनि श्री और प्रकाशक साधुवाद के पात्र हैं।

—अजित प्रसाद जैन

मूलाचार (संस्कृत आचारवृत्ति एवं भाषावचनिका सहित), सम्पादक—डा० फूलचन्द्र जैन 'प्रेमी'; प्रकाशक—भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद, सोनागिर; पृष्ठ ८७० + २९ + २ चित्र; प्रथम सस्करण १९९६ ई०

आगम के प्रथम मूल अंग आचारांग के आधार पर शौरसेनी प्राकृत में १२ अधिकारों में १२४७ गाथाओं में निबद्ध **मूलाचार** ग्रन्थ श्रमणाचार (मुनियों की आचार संहिता) विषयक एक प्राचीन कृति है। यद्यपि इस ग्रन्थ में रचनाकार ने अपना कोई उल्लेख नहीं किया है, इसकी रचना का श्रेय आचार्य वट्टकेर को दिया जाता है। इसका रचनाकाल प्रथम शती ईस्वी का पूर्वार्द्ध अनुमानित किया जाता है। इस ग्रन्थ में समाहित १२ अधिकारों के नाम हैं—मूलगुणाधिकार, वृहत्प्रत्याख्यान-संस्तरस्तव अधिकार, संक्षेपप्रत्याख्यान अधिकार, समाचाराधिकार, पंचाचाराधिकार, पिण्डशुद्धिअधिकार, षडावश्यक अधिकार, द्वादशानुप्रेक्षाधिकार, अनगारभावनाधिकार, समयसाराधिकार, शीलगुणाधिकार, और पर्याप्त्यधिकार।

आचार्य वसुनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती (लगभग १२वीं शती ई०) ने **मूलाचार** पर संस्कृत में **आचारवृत्ति** अपरनाम **सर्वार्थसिद्धि टीका** की रचना की। **मूलाचार** के आधार पर वीरनन्दि ने **आचारसार,** पं० आशाधर ने **अनगारधर्मामृत** और भट्टारक सकलकीर्ति ने **मूलाचारप्रदीप** नामक स्वतन्त्र ग्रन्थों की संस्कृत में रचना की। कन्नड में **मूलाचारसद्वृत्ति** (रचयिता आचार्य मेघचन्द्र) तथा **मुनिजन चिन्तामणि** नाम से दो टीकाएं हैं। १६वीं शती में हुए कवि मेधावी द्वारा **मूलाचार टीका** लिखे जाने का उल्लेख भी मिलता है। इनके अतिरिक्त वि० सं० १८८८ (१८३१ ई०) में जयपुर निवासी पं० नन्दलाल छाबड़ा और पं० ऋषभदास निगोत्या द्वारा **प्राकृत** गाथाबद्ध **मूलाचार** की आचार्य वसुनन्दि कृत संस्कृत टीका के आधार पर ब्रजभाषा मिश्रित ढूँढारी भाषा में **भाषा वचनिका** पूर्ण की गई थी।

विद्वान सम्पादक डा० फूलचन्द्र जैन 'प्रेमी' ने अपने सारगर्भित सम्पादकीय के साथ विवेच्य कृति में **मूलाचार की** प्राकृत गाथाओं को आचार्य वसुनन्दि की उक्त संस्कृत टीका **और पं० नन्दलाल** छाबड़ा व पं० ऋषभदास निगोत्या की **भाषा वचनिका** के साथ प्रस्तुत कर मुनियों की चर्या सुम्बन्धी इस महत्वपूर्ण कृति को हिन्दी भाषी पाठकों के लिये सुबोध बनाया है। **भाषा वचनिका** का सम्पादन तिजारा मन्दिर के शास्त्र भण्डार, अजमेर के सुपारसनाथ स्वामी मन्दिर के शास्त्र भण्डार तथा अजमेर के महापून चैत्यालय में उपलब्ध पाण्डुलिपियों का मिलान करके किया गया है। इस श्रमसाध्य कार्य के लिये सम्पादक साधुवाद के पात्र हैं।

सागार धर्मामृत—प्रणेता पं० आशाधर; हिन्दी अनुवाद—आर्यिका श्री सुपार्श्वमती; प्रकाशक—भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्, सोनागिर; प्रथम संस्करण १९८९-९०; पृष्ठ ५६० + २१ + ६ + ४ चित्र

सागार अर्थात् गृहस्थ या श्रावक का आचरण या चर्या कैसी होनी चाहिये, इस विषय को लेकर जैन परम्परा में संस्कृत में अनेक

ग्रन्थों की रचना हुई। इनमें उल्लेखनीय हैं—आचार्य समन्तभद्र कृत **रत्नकरण्डश्रावकाचार,** अमितगति कृत **श्रावकाचार,** वसुनन्दि कृत **श्रावकाचार**, पद्मनन्दि की **पञ्चविंशतिका**, सोमदेव के **यशस्तिलक** में समाहित उपासकाध्ययन, आचार्य जिनसेन एवं गुणभद्र कृत **महा-पुराण** में प्रसंगानुसार गृहस्थ धम की विवेचना, तथा अमृत चन्द्र का **पुरुषार्थसिद्ध्युपाय।**

गृहस्थ बहुश्रुत विद्वान पण्डित आशाधर ने श्रावकाचार संबधी उपर्युक्त जैन ग्रन्थों तथा **मनुस्मृति, योगशास्त्र**, आदि तद्विषयक जैनेतर ग्रन्थों का मनन कर संस्कृत में **सागार धर्मामृत** ग्रन्थ की **ज्ञानदीपिका पञ्जिका** सहित रचना की थी और बाद में विक्रम संवत् १२९६ (१२३९ ई०) की पौष कृष्ण सप्तमी को उन्होंने उस पर परमार वंशी राजा जैतुगिदेव के राज्यकाल में नलकच्छपुर के श्री नेमि चैत्यालय में ४५०० अनुष्टुप् छन्दों में **भव्यकुमुदचन्द्रिका** नामक टीका रची थी।

सर्वप्रथम १९१५ ई० में पं० नाथूराम प्रेमी ने **सागार धर्मामृत** को **भव्यकुमुदचन्द्रिका टीका** सहित प्रकाशित किया। उसी वर्ष पं० कल्लपा भरमप्पा निटवे ने कोल्हापुर से अपने मराठी अनुवाद सहित इसे प्रकाशित किया। १९७४ ई० में भारतीय ज्ञानपीठ ने इस ग्रन्थ और इसकी **ज्ञानदीपिका पञ्जिका** को सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाश चन्द्र शास्त्री की विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना और उनके द्वारा किये गये हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित किया।

प्रस्तुत संस्करण में **सागार धर्मामृत की भव्यकुमुदचन्द्रिका टीका** श्री सुपार्श्वमती माता जी द्वारा हिन्दी में किये गये अन्वयार्थ, **भावार्थ, विशेषार्थ तथा** प्रसंगानुसार अवान्तर कथाओं के साथ, दी गई है। इसको मुनि श्री अमित सागर जी ने अपनी प्रस्तावना से अलंकृत किया है। इसके प्रकाशन में लखनऊ निवासी श्री सुमेर चन्द्र जैन पाटनी का आर्थिक सहयोग रहा। पुस्तक की प्रति श्री विजय लाल जैन के सौजन्य से प्राप्त हुई जिसके लिये हम उनके आभारी हैं। पुस्तक हिन्दी भाषी श्रावकों के लिये पठनीय है।

नया सन्देश—सम्पादक—मुनि श्री देवेन्द्रसागर जी; प्रकाशक—अष्ट-मंगल फाउन्डेशन, एन/५, मेघालय कालोनी, डा० आमीन डिस्पेन्सरी के सामने, नारनपुरा, अहमदाबाद-३८००१४; प्रथम संस्करण १९९२; मूल्य २०० रुपये

मुख्यतया स्वास्थ्य, शाकाहार और पशु-प्रेम आदि की जानकारी देने, मांसाहार के दुष्प्रभावों को उजागर करने तथा अहिंसा की ओर प्रवृत्त करने के उद्देश्य से मोटे कागज पर भव्य रूप से मुद्रित-प्रकाशित इस पुस्तक में तीन खण्ड क्रमश: गुजराती, हिन्दी और अंग्रेजी में हैं। गुजराती खण्ड में ७५ पृष्ठों में २६ लेख-रचनायें, हिन्दी खण्ड में १०८ पृष्ठों में ३१ लेख और अंग्रेजी खण्ड में ५४ पृष्ठों में १४ लेख समाहित-संकलित हैं। विभिन्न जैन एवं जैनेतर मनीषियों के लेख और विचारों को इस पुस्तक में कुशलता से संजोया गया है तथा उन्हें विभिन्न आगमों, ग्रन्थों आदि में उपलब्ध सूक्तियों से, कहीं-कहीं प्रसंगानुकूल चित्रांकन के साथ भी, सजाया गया है। अंग्रेजी खण्ड में समाहित लेखों में डा० ए० एन० उपाध्ये का History & Heritage, डा० कामता प्रसाद जैन का Entering a new existence, डा० ज्योति प्रसाद जैन का The Highest Religion, राल्फ रिचर्ड कीथान का A Way of Life और डा० जे० डी० ई० मारक्वेट का International Vegetarianism विशेष उल्लेखनीय हैं। डा० भरत गरीवाला के 'भगवान शंकर की पुत्री नर्मदा मैया' विषयक लेख ने तीनों खण्डों में स्थान पाया है। अपने स्वास्थ्य के प्रति सचेत रहने वालों तथा शाकाहार और अंहिसा के प्रेमियों के लिये यह पुस्तक पठनीय एवं संग्रहणीय है।

—रमा कान्त जैन

सरिता (पाक्षिक—अगस्त द्वितीय १९९७), सम्पादक—श्री विश्वनाथ; प्रकाशक—दिल्ली प्रेस पत्र समूह, ई-३, झण्डेवाला एस्टेट, नई दिल्ली-११००५५; मूल्य रु० १२/-

सुश्री लीला जैन ने अपने लेख 'साधु-सन्यासी : समाज पर बोझ' (पृ० ४६-५१) में कुछ प्रश्न उठाये हैं और उनका विश्लेषणात्मक-

समीक्षात्मक विवेचन दिया है। यह प्रश्न उचित है कि साधु-सन्यासी हमारे समाज के लिये कितने उपयोगी और आवश्यक हैं, और यदि उनका उद्देश्य अपने उपदेशों द्वारा समाज में धार्मिकता और नैतिकता की भावना बनाये रखना है तो साधुओं की अपार भीड़ के बावजूद समाज के नैतिक और चारित्रिक स्तर में निरन्तर गिरावट क्यों आती जा रही है। लेखिका का यह निष्कर्ष विचारणीय है कि "एक व्यक्ति जो सचमुच हलाल की कमाई खाता है, अपने बीवी-बच्चों को खुश रखता है, घर और परिवार के प्रति अपने कर्त्तव्यों को ईमानदारी से पूर्ण करता है, पडोसियों के काम आता है, उन्हें कभी अपने व्यवहार से नुकसान नहीं पहुंचाता, इससे भी विस्तृत दायरे में वह समाज और राष्ट्र को लाभ पहुंचाता है, वह सच्चे अर्थों में साधु है।" और यह भी कि "दुनिया से भागकर जो साधु बनते हैं वे वास्तव में जीवन जीते नहीं, जीवन गंवाते हैं।"

अनेकान्त (वर्ष ५०, किरण २, अप्रैल-जून १९९७), सम्पादक—श्री पद्मचन्द्र शास्त्री; प्रकाशक—वीर सेवा मन्दिर, २१ दरियागंज, नई दिल्ली-११०००२; मूल्य रु० १.५० पै०

डा० गोकुल प्रसाद जैन का लेख 'विदेशों में जैन धर्म' पढ़कर विस्मय हुआ। इसको आधुनिक पौराणिक आख्यान का एक सुन्दर उदाहरण मान लिया जाय तो अत्युक्ति न होगी।

तीर्थंकर (वर्ष २७, अंक ४, अगस्त १९९७), सम्पादक—डा० नेमीचन्द; प्रकाशक—हीरा भैया प्रकाशन, ६५, पत्रकार कालोनी, कनाडिया मार्ग, इन्दौर-४५२००१; मूल्य रु० ५/-

डा० नेमीचन्द जी ने अपने उद्बोधक एवं विचारपूर्ण सम्पादकीय 'चरित्र-निर्माण के सुनहले क्षण' में समाज में तेजी से फैल रहे चरित्र-हीनता और भ्रष्ट आचरण के मर्ज पर जो व्यथा व्यक्त की है, वह सर्वथा उचित है और समाज के प्रबुद्ध वर्ग को विवेकपूर्वक उस पर विचार करना अभीष्ट है—

"चर्बी-काण्ड (जैन वनस्पति-काण्ड), जैन हवाला-डायरी-काण्ड, अल-कबीर-भागीदारी-काण्ड, सन्मतिसागर-काण्ड जैसे

प्र-काण्ड अखबार की सुर्खियों में प्रकट हो चुके हैं। वर्ष १९९४ के आरम्भिक महीनों की घटना है, एक जैन अस्पताल (महावीर जैन अस्पताल, दिल्ली) में एक डॉक्टर ने पथरी का ऑपरेशन करते हुए सौ० प्रमिला देवी (तत्कालीन उम्र ३५; अफगान नागरिक) की किडनी चुरा ली और बेच दी। ऑपरेशन का बिल १६,००० रुपये सौंपा गया और बायें गुर्दे की जो चोरी हुई—कहें, डाका पड़ा—वह अलग। जिस महिला ने अपने ऑपरेशन के लिए तमाम आभूषण बेचे हों और जिसके पति को मात्र २,००० रुपये तनखवाह मिलती हो, एक जैन अस्पताल में यह बद-सलूक हो—इसकी तो हम कल्पना भी नहीं कर सकते! जिस अस्पताल के शीर्षक में 'महावीर' शब्द गुथा हो, वहाँ किडनी पर डाका डाला जाता हो और जैन अखबार उंगली तक न उठाता हो तो इस घटना को जैन इतिहास में क्या कह कर पुकारा जाएगा? क्या यह एक अमिट (indelible) काला निशान नहीं है जिसे आने वाली मानव पीढ़ियां अपना अपमान समझेंगी?"

डॉ० जिनेश्वर दास जैन का लेख 'अगंकोर है पार्श्वनाथ की जन्म भूमि (?)' भी **अनेकान्त** में डा० गोकुल प्रसाद जैन के उल्लिखित लेख की शैली में है। दक्षिण भारत के पल्लव और चोल साम्राज्यों के विजय अभियानों के परिणामस्वरूप दक्षिण-पूर्व एशिया के कम्बोडिया, थाईलैण्ड, मलेशिया और इन्डोनेशिया प्रदेशों में ईस्वी ३री शताब्दी से १२वीं शताब्दी तक भारतीय उपनिवेश स्थापित हुए और उन प्रदेशों का भारतीयकरण भी हुआ जो उनकी भाषा, संस्कृति और नामों पर अपनी अमिट छाप छोड़ गया और यह बाद को इस्लामीकरण व ईसाईकरण के बाद भी समाप्त नहीं हुई। वहां जो कुछ पुरातत्त्व उपलब्ध है उससे जैनों की पुराण गाथा का कोई सम्बन्ध नहीं है। अगंकोरवाट का सुप्रसिद्ध मन्दिर एक वैष्णव धर्मायतन था।

मोर के मांस के निर्यात व्यापार के सम्बन्ध में श्री भाल चन्द्र

(शेष पृष्ठ २७६ पर)

समाचार विमर्श

—श्री अजित प्रसाद जैन

आशा की एक किरण

पुणे से प्रकाशित मासिक **ज्ञानशलाका**, ९ अक्टूबर १९९७, में प्रकाशित—

"आचार्य १०८ श्री धर्म भूषण जी महाराज के संघ के २४ नियम—

१. संघ के साथ कोई आर्यिका, क्षुल्लिका व ब्रह्मचारिणी नहीं रहेगी।

२. संघ के त्यागीगण आहार व विहार के समय किसी भी प्रकार से बाजा-साज नहीं बजने देंगे।

३. कोई भी त्यागी अपनी जन्म तिथि या दीक्षा-तिथि नहीं मनवाएंगे।

४. संघ के आहार के पश्चात किसी प्रकार का प्रसाद नहीं बटेगा।

५. किसी भी संस्था या मन्दिर निर्माण के लिए संघ का कोई भी त्यागी चंदा एकत्रित नहीं करेगा।

६. आचार्य पुष्पदन्त, भूतबली एवं कुन्दकुन्द के आम्नाय के किसी भी ग्रन्थ का (चाहे वह कहीं से भी प्रकाशित हो) निषेध नहीं किया जाएगा। न ही जिनवाणी मां का अपमान होने देंगे।

७. अग्नि में धूप डालना, दीपक से आरती उतारना, निर्वाण दिवस के दिन किसी प्रकार का मीठा लड्डू चढ़वाना,

---

(पृष्ठ २७५ का शेष)

जानी द्वारा प्रस्तुत जानकारी आंख खोलने वाली है। सम्पादक जी के प्रश्न—"दिगम्बर जैन मुनि जिन मोर-पंखों का उपयोग करते हैं, वे कहां से आते हैं? क्या उन्हें अहिंसक विधि से प्राप्त करने के लिये अलग से कोई व्यवस्था है? यह भी तय है कि मोर सर्प-भक्षी प्राणी है और सांप जैनों के तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का प्रतीक चिन्ह है, फिर क्या हम इसका कोई विकल्प नहीं ढूंढ पायेंगे?"—का उत्तर दिगम्बर आचार्य प्रमुखों से सहज ही अपेक्षित है।

—डा० शशि कान्त

सामग्री में हार-सिंगार के फूल का प्रयोग, पंचामृत एवं स्त्री द्वारा अभिषेक, भगवान को चन्दन लगाना व हरे फूल व फल चढ़ाना, इन बातों का इस संघ में कोई समर्थन नहीं होगा।

८. कोई भी संघस्थ त्यागी भगवान के सिवाय पद्मावती, क्षेत्रपाल व अन्य किसी भी देवी-देवता का किसी भी प्रकार से प्रचार-प्रसार नहीं करेगा।

९. आहार चर्या के समय किसी भी संघस्थ त्यागी का हरे सचित्त फलों से पड़गाहन नहीं होगा।

१०. किसी भी संघस्थ त्यागी की दीपक द्वारा आरती नहीं होगी।

११. पिच्छीधारी किसी भी त्यागी को वाहन का उपयोग करने की आज्ञा नहीं होगी।

१२. संघस्थ कोई भी साधु अपने पास पिच्छी, कमण्डल व शास्त्र के अलावा अन्य किसी प्रकार का परिग्रह नहीं रखेगा।

१३. रात्रि में तेल मालिश का निषेध होगा।

१४. संघ में पंखा, कूलर व हीटर, टेलीफोन, मरकरी लाइट, एयर कण्डीशनर और मच्छरदानी एवं इसी प्रकार के अन्य साधनों का कोई भी प्रयोग नहीं करेगा।

१५. आचार्य श्री की आज्ञा के बिना कोई कार्य नहीं होगा।

१६. सभी महिलाओं के लिये त्यागियों का चरण स्पर्श करना वर्जित है। महिलाओं का सूर्यास्त के पश्चात मुनियों के पास आना वर्जित है।

१७. संघ के साधुओं को नकली दांत लगा कर आहार लेना व दातार द्वारा नकली दांत लगा कर देना, दोनों वर्जित हैं।

१८. संघ के कोई भी त्यागी हल्दी, टमाटर, पपीता, भिण्डी, तरबूज, पत्ती वाली वनस्पति, आडू, लीची व टाटरी आदि का प्रयोग नहीं करेंगे व गैस व कुकर का बना भोजन नहीं लेंगे।

१९. संघ का कोई भी त्यागी ऐसे मंच पर नहीं जाएगा जहां हरे फूलों का उपयोग किया गया हो।

२०. संघस्थ साधुओं (मुनि, ऐलक, क्षुल्लक) के केशलोंच का कोई समारोह नहीं होगा एवं इसकी कोई पत्रिका भी नहीं छपेगी।

२१. संघ का पिच्छीधारी कोई भी साधु रथयात्रा के साथ नहीं चलेगा व संघ में जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा साथ नहीं रहेगी।

२२. कोई भी साधु व्यक्तिगत कुटिया या मठ बनाकर नहीं रहेंगे एवं सामाजिक स्थान उपलब्ध होते हुए किसी श्रावक के निवास स्थान पर नहीं ठहरेंगे।

२३. संघ में कोई भी शिथिलता (जैसे समय पर सामायिक, प्रतिक्रमण, भक्ति व स्वाध्याय न करना, किसी भी प्रकार की विकथा करना) सहन नहीं होगी। यदि कोई त्यागी नियम के विपरीत क्रिया करेगा तो उसे पद छोड़ कर जाना होगा।

२४. हमारा ध्येय समाज के पक्ष-विपक्ष में न उलझ कर मात्र आत्म कल्याण का ही है और समाज को भी आत्म हित की ही प्रेरणा देना है।"

आचार्य श्री धर्म भूषण जी महाराज स्व० आचार्य श्री शांति सागर महाराज (हस्तिनापुर वाले) के पट्टधर शिष्य हैं तथा अपने गुरुवर्य के समान ही चरम तीर्थंकर द्वारा उपदेशित तथा गणधर देव द्वारा निरूपित शुद्ध आम्नाय की निर्मल धारा को अक्षुण्ण बनाए रखने के प्रबल पक्षधर हैं। आचार्य श्री दिगम्बर जैन श्रमणाचार के शुद्ध निर्दोष स्वरूप को पुनर्स्थापित करने के लिए सतत् प्रयत्नशील हैं। आचार्य श्री के संघ में लागू उपर्युल्लिखित नियमों को देखने से विदित होगा कि उन्होंने शिथिलाचार से कोई समझौता नहीं किया है। नियम १, २, ३, ५, ८, १०, १२, १४ व १६ विशेष रूप से अवलोकनीय हैं।

आज जबकि कतिपय ब्रह्मचर्य महाव्रत के धारी साधु भी यौनाचार के घिनौने आरोप के घेरे में आने से दिगम्बर जैन श्रमणाचार की घोषित ऊंचाइयों पर प्रश्न चिन्ह लगा रहे हैं तथा समूचे श्रमण संघ की खिल्ली उड़ाने के लिए जैनेतर समाज को अवसर दे रहे हैं, भविष्य में दिगम्बर जैन श्रमणों पर इस प्रकार के आरोप लगाये जाने की सम्भावनाओं की कोई गुंजाइश ही न रहने देने के अभिप्राय से, हम ने आचार्य सन्मति सागर प्रकरण के प्रसंग से अपने एक पूर्व लेख में मुनि व आर्यिका संघों के प्रमुखों के विचारार्थ एक

यह सुझाव प्रस्तुत किया था कि मुनि संघों में स्त्रियों का (आर्यिका, क्षुल्लिका, ब्रह्मचारिणी, संघ संचालिका, या रसोई दारिन—किसी भी रूप में) तथा आर्यिका संघों में पुरुषों का किसी भी रूप में प्रवेश वर्जित कर दिया जाना चाहिए। हमारे इस सुझाव का किसी संघ प्रमुख आचार्य या गणिनी आर्यिका जी पर तो क्या प्रभाव पड़ता जबकि एक युवा आचार्य श्री भी जिन्होंने स्वयं भी ऐसे नियम की आवश्यकता मुनि संघों की पवित्रता बनाए रखने के लिये महसूस कर ऐसा नियम बनाये जाने के लिये सार्वजनिक रूप से बल दिया था तथा अपने संघ की ब्रह्मचारिणियों आदि को भी तुरन्त ब्राह्मी आश्रम जाने का आदेश दे दिया था, अपनी शिष्याओं का वियोग अधिक समय तक सहन नहीं कर सके तथा उन्होंने कुछ महीनों के बाद ही शिष्याओं को अपने संघ में वापस बुला लिया। ऐसे में आचार्य धर्म भूषण महाराज के संघ का नियम १ प्रशंसनीय है, सराहनीय है तथा अन्य मुनि व आर्यिका संघों द्वारा अनुकरणीय है।

आज मुनियों-आर्यिकाओं के नगर-प्रवेश, आहार-विहार के समय वैभवपूर्ण गाजे-बाजे का प्रदर्शन, रथयात्रा के साथ उनका जय-जयकार कराते चलना, केशलोंच को वैभवपूर्ण सार्वजनिक समारोहों में महान् तप के रूप में प्रदर्शन के साथ सम्पन्न करना, लुंचित केशों की बोली लगवाना, जन्म-तिथि व दीक्षा-तिथि बड़े वैभवपूर्ण समारोह तथा विशाल प्रीति भोजों के साथ मनवाना एक आम रिवाज हो गया है। इनमें भी होड़ चलती है। जिन मुनिराज/आर्यिका-रत्न के इन आयोजनों को समाज द्वारा जितने विशाल स्तर पर मनाया जाता है और जितना अधिक व्यय किया जाता है, वह उनकी महानता का व श्रावकों के ऊपर उनके प्रभाव का द्योतक समझा जाता है। अब से ६०–७० वर्ष पूर्व तक केवल तीर्थंकरों के ही कल्याणक (विशेषकर अन्तिम तीर्थंकर के ही, वह भी जन्म कल्याणक व मोक्ष कल्याणक ही) मनाने का दिगम्बर जैन समाज में आम रिवाज था क्योंकि वे उनके इस संसार के अन्तिम कल्याणक होते थे। पर अब की बात तो निराली है। यश, ख्याति व मान की होड़ में अनेक

आचार्य, मुनिराज, यहां तक कि आर्यिकाएं भी (जो पंच परमेष्ठी की कोटि में नहीं आती), अपनी आरती व पूजा नियमित रूप से कराते हैं। हमारी समझ में व्यक्तिगत रूप में केवल तीर्थंकरों की ही पूजा की जानी चाहिए, साधुओं की पूजा तो सामूहिक रूप से गुरू पूजा में ही आ जाती है। हां, विशेष अवसरों पर मुनियों की भी पूजा किया जाना अनुचित नहीं है जैसे रक्षाबन्धन पर्व पर विष्णु कुमार मुनि तथा अकम्पनाचार्यादि ७०० मुनियो के संघ की जाती है। यह ध्यातव्य है कि डेढ़-सौ वर्ष पूर्व किसी भी आचार्य/मुनि की पूजा की रचना कदाचित नहीं हुई। निर्वाण दिवस पर भगवान की पूजा में निर्वाण कल्याणक के अर्घ में मीठा लाडू चढ़ाना भट्टारकीय युग की देन है। अब कोई-कोई प्रबुद्ध श्रावक मीठे लाडू के स्थान पर समूचा गोला छील कर चढ़ाने लगे हैं। निर्वाण कल्याणक का अर्घ बोल कर अष्ट द्रव्य के अर्घ के स्थान पर नैवेद्य चढ़ाना वैसे भी उपहासास्पद लगता है।

पंखा, कूलर, हीटर, टेलीफोन का उपयोग तो अब अनेक त्यागीगण करने लगे हैं। एक आचार्य श्री तो भक्तों का कष्ट दूर करने के लिये अपने कक्ष में दो-दो टेलीफोन रखते थे जिन पर वे बराबर व्यस्त रहते थे, तन्त्र-मन्त्र में भी माहिर थे; जब वे इस नगर से गए तो उनके छोटे से संघ (गुरू-शिष्य दोनों आचार्य तथा एक वेतनभोगी सुदर्शना संघ-संचालिका) के परिग्रह में एक स्टेशन वैगन की वृद्धि हो चुकी थी। किसी-किसी संघ के परिग्रह को देख कर तो अनेक गृहस्थों को भी ईर्ष्या हो तो आश्चर्य नहीं होगा। एक मुनि श्री को विहार के पूर्व अपने संघ के ट्रक में सामान की लदान अपनी ही देख-रेख में कराते हमने स्वयं देखा है। कई आचार्य/आर्यिकाओं द्वारा नवीन तीर्थ क्षेत्र निर्माण के लिए (जिसमें परोक्ष रूप से अपने लिये स्थायी भव्य निवास की व्यवस्था भी सामान्यतया सम्मिलित होती है) विपुल मात्रा में चन्दा इकट्ठा कराना एक आम बात हो गई है। ऐसे में आचार्य धर्म भूषण महाराज द्वारा अपने संघ को इन विकृतियों से दूर रख कर शुद्ध श्रमणाचार

की प्रतिस्थापना करने का प्रयास स्तुत्य है।

संघ के कुछ नियम आचार्य श्री की शुद्ध आम्नाय में आस्था के द्योतक हैं, यद्यपि हमारी समझ में तो सभी दिगम्बर जैन मुनि व आर्यिकाओं को तो शुद्ध आम्नाय का ही पोषक होना चाहिये; बीस-पंथी व तेरहपंथी का भेद तो गृहस्थ श्रावकों के लिये है, वीतरागी सन्तों के लिये नहीं है।

आचार्य धर्म भूषण जी द्वारा अपने संघ के लिये प्रख्यापित नियम स्तुत्य हैं तथा हम आशा करते हैं कि अन्य आचार्य/आर्यिका संघ भी अपने संघों में लागू नियमों को सार्वजनिक करेंगे। अब से लगभग २३०० वर्ष पूर्व भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य ने, चरम तीर्थंकर महाप्रभु द्वारा उपदेशित तथा श्रुत केवलियों तक व्यवहृत शुद्ध श्रमणाचार को पुनर्स्थापित करने का भागीरथ प्रयत्न किया था। उन ज्योतिर्धर आचार्य के महान् उपकार से अभिभूत होकर श्री संघ ने भगवान महावीर तथा गौतम गणधर के साथ उन्हें भी मंगल-श्लोक में स्थान देकर उन्हें सदा-सदा के लिए अविस्मरणीय बना दिया। इतना ही नहीं, वरन् समस्त दिगम्बर जैन आम्नाय को कुन्दकुन्दान्वयी घोषित कर दिया। हम कामना करते हैं कि आचार्य धर्म भूषण भी दिगम्बर जैन श्रमणाचार में वर्तमान में आई विकृतियों को दूर करने में समर्थ सिद्ध हों। उन्हें शत-शत वन्दन।

——

श्री महावीरजी सहस्राब्दि

—श्री रमा कान्त जैन

धर्म का नाम ले
अर्थ-काम खूब साधते
मोक्ष चाहते हैं हम ।
किस में मजाल इतनी
हम पै उठाये जो उंगली,
किसकी उंगली में है दम ?

श्री महावीर प्रभु के हम पुजारी ।
जानते हैं सब महिमा हमारी ।।
जग में फैलाते नाम उनका,
ताकि पायें धन-यश भारी ।।

सामर्थ्य हम में है ऐसी,
अच्छे-अच्छों की हो जाय ऐसी-तैसी ।
नूतन तीर्थ कर दें पुरातन
जितना चाहें हम, कमी कैसी ?

भुना रहे खूब नाम उनका
बोलियां मंगल कलशों की लगवा ।
बाँट रहे पुण्य मूढ़ जन को
धन नम्बर दो उनका लगवा ।।

भक्तों को बुलवा रहे हम –
खर्चो रकम जितना हो दम ।
पुण्य की झोली भर लो,
श्याम-धन अपना श्वेत कर लो ।।

जो लगा पायें न बोली,
उनकी खाली रहेगी झोली ।
भवसागर यह तरेंगे वे कैसे ?
पास पड़ी रहेगी पाप-झोली ।।

क्या धर्म आज है इसी में निहित ?
जनसाधारण यह देख है चकित-व्यथित ।
नैतिकता-सदाचरण की क्या यही नियति ?
मिले यश हमको, होती रहे उनकी दुर्गति ।। ★

स्वतन्त्रता की स्वर्ण जयन्ति पर

पूत कपूत से मां बांझ भली

—श्री राजीव कान्त जैन

कैद हुयी सोन चिरैया
चाल समझ न पायी,
स्वराज्य जन्मसिद्ध अधिकार
तिलक ने अलख जगायी । १ ।

आहत मान, बन्द जुबान
परतन्त्र, सब पशु समान,
मांगती स्वतन्त्रता की देवी
सच्चे सपूतों से रक्तदान । २ ।

विस्मिल, भगत, चन्द्रशेखर
शहीदों का बढ़ता रोष,
"वन्दे मातरम्" का उद्घोष
चतुर्दिक बढ़ता गया जोश । ३ ।

आवाहन किया सुभाष ने
खून दो, आजादी लो,
मुक्त मां कराने को
चलो दिल्ली, दिल्ली चलो । ४ ।

दिया सन्देश स्वदेशी का
चला चरखा बापू ने,
फिरंगी के हौसले पस्त
अहिंसा था अमोघ अस्त्र । ५ ।

भारत छोड़ो, भारत छोड़ो
जनमानस समवेत दहाड़ा,
तिरंगा लहर-फहर उठा
हुआ फिरंगी भाग खड़ा । ६ ।

किया कठिन तप पूर्वजों ने
स्वतंत्र सांसें यों न हमने पायीं हैं,
अनगिनत बीबी बेवा हुयीं
अनेकों लाडलों ने जानें गवायीं हैं । ७ ।

पूत कपूत से मां बांझ भली
अब भी समय है, चेतो मेरे भाई,
जब चिड़िया चुग गयी खेत
फिर समझ आई तो क्या आई । ८ । ★

अभिनन्दन

श्री नरेन्द्र कुमार जैन शास्त्री, को शोध-प्रबन्ध "हिन्दी सन्त साहित्य के विशेष सन्दर्भ में महाकवि भूधरदास" पर राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, ने पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की।

पं० विनोद "चिन्मय" शास्त्री जैन, विदिशा, को शोध-प्रबन्ध "जैन दर्शन में सम्यग्दर्शन : समालोचनात्मक अध्ययन" पर डा० हरि सिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, ने पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। प्रो० डा० राधा वल्लभ त्रिपाठी, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, निर्देशक थे।

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी, के निम्नलिखित शोधार्थियों को उनके सम्मुख उल्लिखित शोध-प्रबन्धों पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, ने पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की—

श्री असीम कुमार मिश्र — "ऐतिहासिक अध्ययन के जैन स्रोत एवं उनकी प्रामाणिकता : एक अध्ययन",

श्रीमती शीला सिंह — "द्रोपदी कथानक का जैन और हिन्दू स्रोतों के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन",

कु० रंजना कालविण्ट — "वाल्मीकी रामायण तथा पउमचरियं (जैन राम कथा) का तुलनात्मक अध्ययन", और

श्रीमती रत्ना गिरि — "भारतीय संस्कृति में व्रात्य की अवधारणा।"

जैन भाषा-शास्त्र के शीर्षस्थ विद्वान **प्रो० हरिवल्लभ चू० भायाणी** तथा जैन स्थापत्य एवं कला के मूर्धन्य विद्वान **प्रो० मधुसूदन ढाकी** को वर्ष १९९५-१९९६ का **हेमचन्द्रसूरि पुरस्कार** भोगीवाला लहेरचन्द्र इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डोलाजी, दिल्ली, में ८ जून को प्रदान किया गया।

प्रसिद्ध कवि एवं तत्त्वमर्मज्ञ **श्री राजमलजी पवैया** की कृतियों **तत्त्वसार विधान** और **तत्त्वानुसार विधान** का राज भवन, भोपाल में १३ जुलाई को तत्कालीन महामहिम राष्ट्रपति डा० शंकर दयाल शर्मा द्वारा लोकार्पण किया गया।

बूंदी (राजस्थान) के **श्री जीतेश नगौरी** ने संघ लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित सिविल सर्विसेज परीक्षा की वरीयता सूची में ८०वां स्थान प्राप्त किया। उनका चयन 'भारतीय पुलिस सेवा' के लिये हुआ है।

ललितपुर से भाजपा विधायक **डा० अरविन्द कुमार जैन** को कल्याण सिंह मन्त्रिमण्डल में राज्य मन्त्री, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विभाग, बनाया गया है।

पंडित प्रवर **जवाहर लाल सिद्धान्त शास्त्री** को भीण्डर में २० अक्तूबर को जैन समाज द्वारा **करणानुयोग सिद्धान्त मर्मज्ञ** की उपाधि से सम्मानित किया गया।

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर, द्वारा **आचार्य श्री हस्तीमल स्मृति सम्मान १९९७** सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर के जैन विद्या एवं प्राकृत विभाग में प्रोफेसर एवं कला महाविद्यालय के अधिष्ठाता **डा० प्रेम सुमन जैन** को प्रदान किया गया।

डा० दरबारी लाल कोठिया के लिये संस्कृत भाषा के शीर्ष विद्वान का राष्ट्रपति-सम्मान घोषित किया गया।

वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, की एम० ए० (प्राकृत) परीक्षा में **कु० रजनी जैन** ने प्रथम श्रेणी में **प्रथम स्थान** प्राप्त किया।

उपर्युक्त सभी महानुभावों का **शोधादर्श** परिवार उनकी उपलब्धि पर अभिनन्दन करता है और हार्दिक शुभकामनायें प्रेषित करता है। शोधकर्ता विद्वानों से आग्रह है कि वे अपने शोध-प्रबन्ध का सार-संक्षेप (चार पृष्ठों में टंकित) **शोधादर्श** में प्रकाशनार्थ भेजें।

——

समाचार विविधा

जिनागमों की मूल भाषा पर द्वि-दिवसीय संगोष्ठी

प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, प्राकृत विद्या मण्डल और प्राकृत जैन विद्या विकास फण्ड नामक संस्थानों के संयुक्त तत्त्वावधान में अहमदाबाद में २७–२८ अप्रैल को **जैन आगमों की मूल भाषा** पर एक संगोष्ठी हुई । संचालन डा० कुमारपाल देसाई ने किया । संगोष्ठी में तीन सत्रों में १३ शोध-पत्र प्रस्तुत किये गये और साधिक ५० विद्वानों ने चर्चा में भाग लिया । प्रथम सत्र की अध्यक्षता प्रो० मधुसूदन ढाकी ने, द्वितीय सत्र की अध्यक्षता डा० सत्यरंजन बनर्जी (कलकत्ता) ने तथा तृतीय सत्र की अध्यक्षता डा० सागर मल जैन ने की । प्रस्तुत शोध-पत्रों का सार था—भगवान महावीर की भाषा अर्ध-मागधी ही थी; शौरसेनी से अर्ध-मागधी भाषा प्राचीन है; जैन आगमों की भाषा अर्ध-मागधी ही है और शौरसेनी भाषा में आगम साहित्य नहीं है; तथा शौरसेनी में निबद्ध साहित्य अर्ध-मागधी आगमों की अपेक्षा परवर्ती काल का है ।

इस अवसर पर डा० के० आर० चन्द्र द्वारा भाषिक दृष्टि से पुन: सम्पादित **आचारांग प्रथम अध्ययन** का विमोचन पं० दलसुख भाई मालवणिया द्वारा किया गया ।

भारतीय चिन्तन में काल की अवधारणा पर संगोष्ठी

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी, में २८ जुलाई को दो सत्रों में **भारतीय चिन्तन में काल की अवधारणा** विषय पर संगोष्ठी हुई जिसमें मुख्य अतिथि विद्यावाचस्पति प्रो० विद्यानिवास मिश्र ने विषय का प्रवर्तन किया । सत्रों की अध्यक्षता क्रमश: प्रो० कमलेश दत्त त्रिपाठी, का० हि० वि० वि०, तथा प्रो० रघुनाथ गिरि, काशी विद्यापीठ, ने की; शोध-पत्रों का वाचन प्रो० रेवती रमण पाण्डेय, प्रो० आर० के पाण्डेय, प्रो० आर० एस० शर्मा और डा० अशोक सिंह ने किया । मुख्य वक्ता प्रो० राम जी सिंह, निदेशक, गांधी विद्या संस्थान, वाराणसी, थे । डा० अशोक कुमार सिंह ने अपने

शोध-पत्र में श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा में काल विषयक अवधारणा का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया ।

भारतीय तन्त्र शास्त्र पर संगोष्ठी

अखिल भारतवर्षीय संस्कृत परिषद के तत्त्वावधान में **भारतीय तन्त्रशास्त्र के वैदिक आधार** पर एक त्रि-दिवसीय संगोष्ठी २७ नवम्बर से २९ नवम्बर तक लखनऊ में हुई । सात सत्रों में शैवतन्त्र, शाक्ततन्त्र, वैष्णवतन्त्र (पाञ्चरात्र और वैखानस), बौद्धतन्त्र, जैनतन्त्र तथा अन्य तान्त्रिक परम्पराओं पर २९ शोध-पत्र प्रस्तुत हुए । डॉ० फूलचन्द्र जैन 'प्रेमी' (वाराणसी) ने 'जैन परम्परा में तन्त्र, मन्त्र और यन्त्र' पर और डॉ० ऋषभचन्द्र जैन 'फौजदार' (वैशाली) ने 'यन्त्र-तन्त्र विषयक जैन साहित्य' पर अपने शोध-पत्रों में विषय का तथ्यपरक व विधेयात्मक विवेचन किया । डा० शशि कान्त ने स्पष्ट किया कि जैन धर्म-दर्शन में तन्त्रवाद का स्वयं कोई स्थान नहीं है वरन् अन्य कर्मकाण्ड की तरह यह भी पारिवेशिक लोक संस्कृति के प्रभाव से जैन धर्मावलम्बियों में भी प्रसार पा गया । सत्र की अध्यक्षता डा० नवजीवन रस्तोगी ने की । संयोजन डा० अशोक कुमार कालिया ने किया ।

महिला जैन मिलन

महिला जैन मिलन, लखनऊ, द्वारा २८ अगस्त को अपनी प्रथम जयन्ति पर जुगल किशोर रस्तोगी हाल, चौक, में सांस्कृतिक संध्या का आयोजन किया गया । समाज के बालक-बालिकाओं द्वारा 'असत्य का फल' नाटिका का मंचन किया गया । नाटिका का लेखन, निर्देशन और स्वर-संधान श्रीमती शारदा जैन ने किया । संचालन श्रीमती रमा जैन, मंत्री, ने किया ।

भगवान महावीर कैन्सर अस्पताल का लोकार्पण

राजस्थान के मुख्यमन्त्री भैरोंसिंह शेखावत ने २३ अक्तूबर को जयपुर में नवनिर्मित भगवान महावीर कैन्सर अस्पताल की प्रारंभिक सेवाओं (बहिरंग विभाग) का लोकार्पण किया । मुख्यमन्त्री ने अस्पताल के रोगियों के परिजनों के ठहरने के लिए धर्मशाला की जमीन प्रदान करने की घोषणा भी की ।

दीपावली मेला

जैन महिला मण्डल, लखनऊ, द्वारा अपने तृतीय स्थापना दिवस पर ९ नवम्बर को जैन बाग, डालीगंज, में दीपावली मेले का आयोजन किया गया। उप नगर प्रमुख श्रीमती उर्मिला मिश्रा ने उद्घाटन किया। फैन्सी ड्रेस प्रतियोगिता में शिशुओं से लेकर महिलाओं तक ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। प्रतियोगियों को 'ज्योति प्रसाद जैन ट्रस्ट' द्वारा भी पुरस्कृत किया गया। अध्यक्षा श्रीमती सुधा जिन्दल ने बताया कि इसका उद्देश्य महिलाओं में सामाजिक चेतना जाग्रत करना है।

जैनत्व का यथार्थ आचरण

डा० क्रिश्चियन बर्नार्ड ने १९६७ में सर्वप्रथम हृदय प्रत्यारोपण (human heart transplant) का सफल आपरेशन किया था और उनकी इस शल्य क्रिया ने बहुतों को प्राणदान दिया। परन्तु जब उनसे किसी ने पूछा कि आपने तो अनेकों की जीवन रक्षा की है, उनका संक्षिप्त सा उत्तर था—'हाँ, मैंने एक बकरी की जान बचायी।' यह उस समय की बात है जब एन्टीबायटिक औषधियों की जानकारी नहीं थी और डा० बर्नार्ड दक्षिणी अफ्रीका के एक गाँव में एक किसान को देखने गये थे जो न्यूमोनिया से पीड़ित था। वह रात भर मरीज के पास बैठे रहे। किसान की पत्नी ने कहा था कि उन लोगों का घरेलू इलाज तो यह है कि एक बकरी को मार कर उसकी चमड़ी निकाल ली जाये और उस चमड़ी को बीमार के सीने पर लपेट दिया जाए। जब वह सुबह को उस किसान के घर से निकले तो उन्होंने उस बकरी को देखा जिसकी चमड़ी उधेड़ी जानी थी। अब उस बकरी की जान बच गयी, इससे उन्हें आन्तरिक आह्लाद हुआ। उनका उक्त उत्तर इसी घटना के सन्दर्भ से था।

जैनत्व के इस यथार्थ आचरण के लिए डा० बर्नार्ड को 'जैन' लेबुल लगाने की आवश्यकता कभी नहीं हुई।

(**The Pioneer**, २९-९-९७, में प्रकाशित समाचार के आधार से)

'मानव दुग्ध बैंक' या नारी का स्तन शोषण

मुम्बई में नगर पालिका द्वारा संचालित लोकमान्य तिलक अस्पताल में विदेशी लेडी डाक्टर अर्मेडा फर्नान्डेज द्वारा एक विचित्र योजना प्रारम्भ की गई है। इसके अन्तर्गत स्वयंसेवी माताएं प्रति माह अपना ९० से १०० लीटर दूध उपलब्ध कराती हैं जो वहाँ प्रसवित नवजात शिशुओं के पीने के लिये एकत्र किया जाता है। इसे 'मानव दुग्ध बैंक' का नाम दिया गया है।

हमारे देश में इस प्रकार का अभी यह अकेला बैंक प्रकाश में आया है, परन्तु आश्चर्य नहीं होगा यदि देश की गरीबी का उपहास करने के लिए विदेशियों द्वारा ईसाई करुणा के नाम पर मिशनरी अस्पतालों में यह कार्य हो रहा हो। यह नारी के शोषण का नया आयाम है। अभी तक स्त्रियों के यौन शोषण (Sex Exploitation) के प्रति लोग चिन्तित रहते थे, अब स्तन शोषण (Breast Exploitation) भी चालू हो गया। विस्मय की बात यह है कि महिला कल्याण से जुड़ी किसी संस्था ने इसकी ओर ध्यान नहीं दिया और ना ही किसी धर्माचार्य या धार्मिक समुदाय ने इस पर कोई चिन्ता व्यक्त की।

गौशाला स्थापना

छिंदवाड़ा (मध्य प्रदेश) से १३ कि०मी० दूर मेघासिवनी ग्राम में **बाहुबली जीवरक्षा एवं पर्यावरण संरक्षण न्यास** द्वारा एक गौशाला की स्थापना की गई है जिसमें ८१३ पशुओं को कसाइयों से बचाकर लाया गया है। इसमें पशुओं के रहने और उनका आहार रखने के लिये ११,००० वर्ग फुट का पक्का शेड बनवाया गया है, ४.९८ लाख रुपये की लागत का एक जलाशय बनवाया गया है और पाँच हजार वृक्षों का रोपण किया गया है।

'Silent Scream' Film ('मूक चीख' फिल्म)

कोल्हापुर से श्री जे० परमार द्वारा प्रेषित सूचनानुसार सन् १९८४ में कनास सिटी, मिस्सौरी (संयुक्त राज्य अमेरिका), में सम्पन्न National Rights to Life Convention में १५ मिनट के भीतर

गर्भस्थ १० सप्ताह की एक मासूम किन्तु चुस्त बच्ची का गर्भपात किये जाने की प्रक्रिया और उसके प्राण हरते समय उस पर होती रही प्रतिक्रिया पर जीवन्त बनी 'Silent Scream' Film भी दिखाई गई थी। कहते हैं जिस डाक्टर ने यह गर्भपात किया था और मात्र कौतुहलवश उसकी फिल्म बनवा ली थी, चित्रित लोमहर्षक दृश्य को देखकर स्वयं दहशत खा गये और अपना क्लीनिक छोडकर चले गये व फिर वापस नहीं आये। भूतपूर्व अमेरिकी प्रेसीडेन्ट श्री रोनाल्ड रीगन भी इस फिल्म से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अपने प्रत्येक सांसद से उसे देखने का अनुरोध किया तथा अपने देश के Abortion Law को बदलने का मन भी बना बैठे। अपने देश और अपनी समाज में भी इधर भ्रूण हत्या, विशेषकर गर्भस्थ मासूम बच्चियों की हत्या, की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। क्या अपने को अहिंसाणुव्रती कहने वाला समाज इस कुप्रवृत्ति से अपने को बचाने का यत्न करेगा? ★

शोक संवेदन

अगस्त मास में सागर में वयोवृद्ध विद्वान पं० भुवनेन्द्र कुमार शास्त्री का निधन हो गया।

१ सितम्बर को गिरीडिह में आगरा के ६४ वर्षीय पं० केवल चन्द्र शास्त्री का निधन हो गया।

नई दिल्ली में अहिंसा इण्टरनेशनल के पुरस्कारों में 'डिप्टीमल जैन पुरस्कार' के पुरस्कर्ता समाजसेवी ५८ वर्षीय श्री आदीश्वर लाल जैन का विगत माह में असामयिक निधन हो गया।

ललितपुर में २६ नबम्बर को ६८ वर्षीय स्वतन्त्रता सेनानी व साहित्यकार कवि श्री हुकम चन्द बुखारिया 'तन्मय' का निधन हो गया।

उपर्युक्त दिवंगत के प्रति **शोधादर्श** परिवार अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है और उनकी आत्मा की चिरशान्ति एवं सद्गति की प्रार्थना करता है, तथा शोक संतप्त परिजनों के प्रति अपनी हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है। ★

आभार

धर्ममंगल (ता० १६ ऑगस्त १९९७) में श्री अजित प्रसाद जैन के **शोधादर्श**-३१ में समाचार विमर्श 'आचार्य श्री का निर्वाण महोत्सव' का मराठी में रूपान्तर 'आचार्य श्रीं चे निर्वाण महोत्सव —(श्रद्धेचा अतिरेक ?)' प्रकाशित किया गया।

शोधादर्श-३२ में प्रकाशित डा० ज्योति प्रसाद जैन के लेख Some Common Features of Jain and Buddhist Traditions and Art को Voice of Ahinsa (Sept.-Oct. 1997) में पुनः प्रकाशित किया गया।

ज्ञानशलाका (९ अक्टूबर १९९७) में **शोधादर्श-३२** में श्री अजित प्रसाद जैन के समाचार विमर्श 'ओं ह्रीं ज्ञानमत्यै नमः' को प्रकाशित किया गया जो **समन्वयवाणी** में भी प्रकाशित हुआ।

शोधादर्श को बहुमान देने के लिये सम्पादक मण्डल **धर्ममंगल** की सम्पादिका प्रा० सौ० लीलावती जैन, **VOA** के सम्पादक श्री वीरेन्द्र प्रसाद जैन और **ज्ञानशलाका** की सम्पादिका श्रीमती वासंती शहा के प्रति आभारी है। ★

पाठकों की दृष्टि में

शोधादर्श-३२ (जुलाई १९९७) के लिये हार्दिक बधाई। निर्भीक पत्रकारिता का अपना अप्रतिम स्थान है—इसे जारी रखिये। इससे न सिर्फ हिन्दी-पत्रकारिता अपितु विश्व-पत्रकारिता गौरवान्वित होगी। इसे मासिक कर दीजिये। वस्तुतः जैनों को एक विद्रोहमूलक क्रान्ति की आवश्यकता है, जो उन्हें जड़मूल से झकझोरे और द्वार पर खड़े परिवर्तनों के लिये विवश करे। आप जो भी कर रहे हैं, उससे जैनधर्म की गरिमा बनी है और यह संकेत प्रस्थापित हुआ है कि कहीं किसी कोने में एक चन्द्रोदय है, जो भले ही शीतल हो किन्तु जिसके भीतर ज्वालामुखियाँ धधक रही हैं। मुझे विश्वास है आज नहीं तो कल समाज का एक जबर्दस्त कायाकल्प होगा।

शोधादर्श ने पत्रकारिता के क्षेत्र में कुछ ऐसे आदर्श स्थापित किये हैं, जो आगे चल कर मील के पत्थर साबित होंगे। आज प्राय: सभी भयभीत हैं, निर्भीकता तो लगभग चुक गयी है, उसकी जगह कायरता और बोदापन आ गये हैं। मेरी शुभकामनायें स्वीकार कीजिएगा।

—**डा० नेमीचन्द**, संपादक, **तीर्थंकर**, इन्दौर

आपने जो विचारणीय बातें पुण्य के बारे में प्रस्तुत की हैं—उन पर विद्वत्-परिषद व महासभा तो विचार करेगी नहीं। परिषद और महासमिति झंझट में पड़ेगी नहीं। कोई व्यक्तिगत विद्वान विवेचन करेगा तो उसे पुरस्कार नहीं मिलेगा, प्रवचन का निमन्त्रण नहीं मिलेगा। किन्तु **शोधादर्श** का यह प्रकाशन इतना सन्तोष जरूर देता है कि आपके साथी (हम लोग) जो जनता की तरह यह सोचने लगे थे कि "वीर विहीन मही मैं जानी"—उन साथियों के प्राणों में स्पंदन होने लगा कि हमारे हृदयों की आवाज भी प्रकाशन में है।

ऐसे समाचार (सन्मति सागर, ज्ञानमती आदि के) इतने विस्तार और निर्भीकता के साथ दे सकना असाधारण योग्यता व साहस का परिचायक है। समाज कृतज्ञ है कि वेषधारी नेताओं और वेषधारी त्यागियों से समाज को सावधान कर रहा है **शोधादर्श**।

देहधारी सम्यग्दृष्टि भी (अर्हन्त परमेष्ठी के अलावा) अज्ञानाँश और चारित्र-मोह (कषाय) से मजबूर होते हैं। वे "परम पूज्य" से अलंकृत होने के अधिकारी नहीं हैं। आज सारी समाज और त्यागी वर्ग "परम पूज्य" की उपाधि के बिना संतुष्ट नहीं हो रहा है। 'शिरोमणि' के बिना आर्यिका होना निरर्थक है। ब्रह्मचारी है तो 'कर्मयोगी' की उपाधि चाहिए। मुनि हो तो "आचार्य", "ज्ञान-दिवाकर", "मौन-प्रिय" आदि चाहिये। हमें राष्ट्र-संतत्व की अनुमोदना भी नहीं चाहिए, और ना इस पर टीका करनी है कि किस तरह तथाकथित विद्वानों को वे पुरस्कारों से वश में रखते हैं। किन्तु जहाँ सीमा का उल्लंघन अनाचार से होता हो, उसकी सूचना समाज को मिलनी चाहिए ताकि कुछ brakes शायद ये लोग लगा लें।

वेष पर्याय है, समयानुसार व शक्त्यानुसार बदलना चाहिये। जबर्दस्ती नगनत्व पकड़ रखा है जबकि शक्ति नहीं है। इसीलिये फजीता-तमाशा हो रहा है। चारित्र के ध्रुव-गुण तेरह हैं—५ महाव्रत, पांच समिति और ३ गुप्ति (रत्नत्रय की पूजा)। १५ मूलगुण जो पर्याय के हैं–उनके नाम चाहे यही रहें, रूप शक्ति के अनुसार होना चाहिये। गाधी जी "नंगा फकीर" कहे जाते ही थे। Literal (शाब्दिक) अर्थ से चिपकना अपने ही उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के विरुद्ध जाना है।

—**श्री सुखमाल चन्द जैन**, नई दिल्ली

आचार्य राजकुमार का लेख "आडम्बर में जकड़ा हुआ धर्म" तथा डॉ० बसन्तराज का आलेख "जैन मतानुसार विवाह का आरम्भ" पढ़कर मन अत्यन्त प्रफुल्लित हुआ।

—**डा० (श्रीमती) सुधा जैन**, वाराणसी

निर्भीकता एवं स्पष्टता **शोधादर्श** पत्रिका की अपनी विशेषता है।

—**डा० रत्न लाल जैन,** हांसी (हरियाणा)

सफल सम्पादन एवं आकर्षक प्रकाशन हेतु बधाई स्वीकार करें। बौद्धिक जगत के लिए बहुत ही उपयोगी एवं अपरिहार्य विन्दुओं का स्पर्श पढ़ने को मिलता है।

—**डा० शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी,** लखनऊ

आप जो शोध सामग्री इसके माध्यम से प्रकाशित कर रहे हैं वह निश्चित ही जैन इतिहास और संस्कृति की दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण होती है।

—**डा० भागचन्द्र जैन 'भास्कर'**, नागपुर

कलिकाल सर्वज्ञता पर विस्तृत विचार/जानकारी अत्यन्त उपयोगी है। अंक हमेशा की तरह पठनीय सामग्री से भरपूर है।

—**प्रा० सौ० लीलावती जैन**, संपादिका, **धर्ममंगल**, जलगांव

सम्पादकीय में कलिकाल सर्वज्ञ जैसे विशेषण पर सूक्ष्म/गम्भीर चिन्तन देते हुए उन तथाकथित भक्तों के अतिरेक पर अच्छा ठोस प्रमाणिक तर्क प्रस्तुत किया है। इस पर प० पू० आचार्यों को मार्ग

दर्शन देना चाहिये। आचार्य शिवचन्द्र जी शर्मा का लेख 'क्या वेद में इतिहास है ?' प्रेरक है। रमा कान्त जी ने डा० ज्योति प्रसाद जी विषयक प्रस्तुति से श्रद्धापूर्ण स्मरण को साकार कर दिया है। समाचार विमर्श व जैन विद्या संगोष्ठी पर रिपोर्ट ने जैन जगत की साहित्यिक हलचलों का साक्षात् रसास्वादन कराया है।

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति के प्रगति प्रतिवेदन से यह भी स्पष्ट हुआ है कि सर्व धर्म समभाव जैसे ध्येय/उद्देश्य के लिये यह संस्था सचमुच परोपकारिणी है।

पत्रिका जैन समाज का निर्मल प्रतिबिम्ब है, ऐसा मैं मानता हूं।

—**श्री मोतीलाल जैन 'विजय'**, कटनी

शोधादर्श-३२ अंक मिला। मेरे अल्पबुद्धि की जिज्ञासा पर आप श्री ने इतने सुन्दर—मर्मग्राही, बुद्धि प्रामाण्यवादी—विचार व्यक्त किये हैं कि कोई भी जानकार वाला श्रावक यह विचार पढ़ के अभी की परिस्थितियों और साधु भगवंतों की life style पर पुनर्विचार करने का विचार करेगा।

शोधादर्श एक उत्तम पत्र है जो विचार प्रवणता पैदा करता है। आज मुनिधर्म जैसा भगवान ने प्ररूपित किया है, इसको दुबारा कहना है।

आप श्री की यह धर्म सेवा और समाज सेवा है। और इसके लिये मेरा आप श्री को वन्दनयुक्त अभिनन्दन।

—**श्री शान्तिलाल के० शहा**, सांगली

शोधादर्श का जुलाई अंक मेरे हाथ में है। वास्तव में यह पत्रिका जैन समाज के लिए बहुत उपयोगी है। इसके सरल और भावपूर्ण लेख रुचिकर लगते हैं। इसकी उन्नति के लिए भगवान से मेरी प्रार्थना है।

—**श्रीमती शारदा जैन**, लखनऊ

शोधादर्श के आपके लेख ध्यानपूर्वक पढ़ता हूँ और पढ़े। विचार प्रशस्त हैं—कोई सुने न सुने, कर्त्तव्य पूरा करना है।

श्री पद्मचन्द्र शास्त्री, संपादक, **अनेकान्त**, नई दिल्ली

आपके लेख अकाट्य और पठनीय होते हैं। अंक बहुत अच्छा, ग्राह्य है।

आध्यात्म की आंधी और एकांगी-ऊँची बातें किन्तु व्यवहार में चारित्र का लोप। पूर्ण नहीं जो मानवीय गुणों से भी वो धर्म क्या जाने? आपकी लेखनी का मै कायल हूँ, मुरीद हूँ, आदर करता हूँ, सशक्त है, जानदार शब्द-बाई-शब्द सभी पढ़ा है ३२-**शोधादर्श**। बीस-पंथी साधुओं का जबरदस्त आतंक है तेरह-पंथ पर। मन्दिर भी हड़पने लगे हैं। कुदेवों की पूजा के निषेध का लेख पठनीय है।

—**श्री महावीर प्रसाद जैन सर्राफ**, देहली

शोधादर्श का नया अंक मिला। विचारोत्तेजक लेख हैं।

—**श्री दिग्दर्शन चरण जैन**, नई दिल्ली

आचार्य सन्मति सागर प्रकरण पर **शोधादर्श** में प्रकाशित आपकी क्षणिका बहुत पसन्द आई। इस प्रकरण का इतना प्रचार हुआ है कि अजैन बन्धुओं के समक्ष लज्जित होना पड़ता है।

—**डा० (कु०) मालती जैन,** मैनपुरी

शोधादर्श वास्तव में दिन-प्रतिदिन अपने नये परिवेश के साथ गम्भीर, विद्वान और समय पड़ने पर आलोचक भी होता जा रहा है। जैन पत्र-पत्रिकाओं में मेरे विचार से मात्र **शोधादर्श** ही वह पत्रिका है, जो शोध लेखों के साथ-साथ जैन जगत और समाज में घुस आई बुराइयों की विस्तृत जानकारी प्रेषित करती रहती है। अब यह तो विचारकों, बुद्धिजीवियों और सामाजिक सुधारकों का कार्य है कि वे इससे कितना लाभ उठा पाते हैं। **शोधादर्श** अपनी इसी गति के साथ बढ़ता चले, मेरी सारी शुभकामनाएं इसके साथ हैं। आप लोगों के प्रयत्न और लगन का मैं वास्तव में कायल हूं।

—**डा० विनोद कुमार तिवारी**, रोसड़ा

विविध स्तम्भों-सूचनाओं से सम्पृक्त **शोधादर्श** का यह अंक स्तरीय पत्रकारिता के श्रेष्ठ प्रतिमानों को प्रतिष्ठापित करने में सर्वथा सफल है, जिसके लिये सम्पादक मण्डल हमारी हार्दिक बधाई एवं साधुवाद का सत्पात्र है।

—**प्राचार्य डा० कैलाश नाथ द्विवेदी**, कोंच

सभी लेख उत्तम एवं शोधपरक हैं, परन्तु आचार्य राजकुमार जैन का लेख "आडम्बर में जकड़ा धर्म" और आचार्य शिवचन्द्र शर्मा का लेख 'क्या वेद में इतिहास है' विशेष प्रेरणादायक एवं विचारणीय है।

—डा० कृष्ण पाल त्रिपाठी, बलिपुर टाटा (कौशाम्बी)

इस चातुर्मासिक पत्रिका की पूर्वाग्रहरहित उदात्त जैन दृष्टि ही इसका विशिष्ट अभिज्ञान है। प्रस्तुत पत्रिका की तो पुण्य श्लोक डा० ज्योति प्रसाद जैन स्मृति विशेषांक की ही योजना होनी चाहिए। यह पत्रिका ज्ञानोन्मेषक दार्शनिक चिन्तन का परिवेषण व्यापक और जनोपयोगी दृष्टि से करती है। इसकी यह सर्वसाधारणता अपने आप में असाधारण है। पदे-पदे स्वेदवाही सम्पादकीय श्रम के अह्लादक दर्शन मन को मोह लेते हैं। **शोधादर्श** अपने नाम का अन्वयार्थ करने वाली एक सार्थक शोध-पत्रिका है।

—डा० श्रीरंजन सूरिदेव, पटना

निःसन्देह अध्यात्म व शोध से जुड़ी इस पत्रिका का वैशिष्ट्य अलग ही झलकता है।

—आचार्य शिवचन्द्र शर्मा, सहारनपुर

परिचर्चा के अन्तर्गत 'पुण्य क्या है ? श्रमण कौन है ? उपादेय किम् ?' आदि बिन्दुओं पर श्री शान्तिलाल के० शहा के भावों पर अपना मत व्यक्त करते हुए डा० शशि कान्त ने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा है कि जो स्वयं आत्म-विज्ञप्ति, छल-प्रपंच तथा बाह्याडम्बरों में लिप्त है, वह जैन धर्म के अपरिग्रह, त्याग एवं वैराग्य की शिक्षा कैसे देगा ? उन्होंने दिगम्बरत्व के विरुद्ध भी अपने स्वर को मुखर किया है और प्रश्न किया है कि साधु के लिये शारीरिक अशुचिता का भाव कैसा ? उन्होंने ब्राह्मणों के जैन-धर्म में घुस-पैठ का भी पर्दाफाश किया है। अकर्म की स्थिति को भी उन्होंने एक सैद्धांतिक आदर्श माना है।

स्वर्गीय डा० ज्योति प्रसाद जैन का लेख Some Common Features in Jaina and Buddhist Traditions and Art'

भी शोधपूर्ण तथा ज्ञानवर्धक है। यह लेख उभय धर्म एवं संस्कृतियों का तुलनात्मक विवेचन भी प्रस्तुत करता है।

आचार्य राजकुमार जैन का लेख 'आडम्बर में जकड़ा हुआ धर्म' भी चिन्तन प्रधान है। प्रत्येक धर्म में पंडित, मुल्ला, पादरी धर्म के ठेकेदार बन बैठे हैं, जो जन-सामान्य को मूर्ख बनाकर ठगने का कार्य तो करते ही हैं, अपना मान-सम्मान भी ऊँचा रखने का प्रयास करते हैं, जबकि वे स्वयं धर्म के विरुद्ध आचरण करते हैं। डॉ० एम० डी० वसन्तराज का लेख 'जैन मतानुसार विवाह पद्धति का आरम्भ' भी रोचक है।

शोधादर्श-३२ में जैन-साहित्य, धर्म-ग्रन्थों तथा विभिन्न मान्यताओं पर गहनता से विचार-विमर्श हुआ है। श्री रमा कान्त जैन के प्रारम्भिक लेख में वादीभ सिंह के सम्बन्ध में गवेषणात्मक विवेचन हुआ है। इस अंक में समाचार, रिपोर्ट, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति का प्रगति-प्रतिवेदन और आय-व्यय का लेखा-जोखा, पाठकों के विचार, साहित्य-सत्कार, अभिनन्दन आदि बहुरंगीय सामग्री का संकलन किया गया है। **शोधादर्श** सामान्य पत्र-पत्रिकाओं से सर्वथा भिन्न एक गवेषणात्मक चातुर्मासिकी है।

—**डा० परमानन्द जड़िया**, लखनऊ

शोधादर्श का ३२वां अंक पा कर आनन्दित हुआ। कारण, उसकी सामग्री यथार्थ धरातल पर खड़ी है और उसे भूमि का ठोस आधार प्राप्त है। इसमें दिया हुआ हर लेख, हर समीक्षा और समाचार-सार एक से बढ़कर एक तथा सार्थक हैं। आपका संपादकीय 'कलिकाल तीर्थंकर' अतिशय सटीक है। आजकल उपाधियाँ खरीदी जाती हैं। आचार्य, मुनिराज भी उससे अछूते नहीं हैं। इसी सन्दर्भ में डॉ० शशि कान्त जी ने परिचर्चा में श्री शांतिलाल के० शहा के 'पुण्य क्या है, श्रमण कौन तथा उपादेय किम्' पर जो विस्तृत टिप्पणी दी है, देख सकते हैं। श्री शहा का विवेचन तो उत्कृष्ट है ही पर शशि कान्त जी की टिप्पणी बहुतांश सटीक है। परन्तु उनके पृष्ठ १४२ पर दिगम्बरत्व विषय में दी हुई टिप्पणी से

मैं सहमत नहीं हूँ। आपके समाचार विमर्श में श्री ज्ञानमती जी, सन्मति सागर तथा श्रवणबेलगोला के भट्टारक जी के सन्दर्भ में जो विमर्श दिया है, उससे मैं पूर्णतया सहमत हूँ। यह विचार-विमर्श अतिशय सटीक और परामर्श स्वरूप है। नये भट्टारक पीठ की स्थापना भी अनुचित है। जो हैं उनमें ही प्रभूत सुधार अपेक्षित हैं। और भी अनेक विषय अतिशय वाचनीय और मननीय हैं। सभी सामग्री अतिशय उपयुक्त है।

—**श्री मनोहर मारवडकर**, नागपुर

शोधादर्श पत्रिका ने पत्रकारिता जगत में अपना अनूठा स्थान कायम किया है। वर्तमान में अविरल गति से बढ़ते हुए श्रमणाचार के शिथिलाचार को रोकने का प्रयास **शोधादर्श** के सम्पादक मण्डल एवं लेखकों का है। प्रत्येक अंक स्थायी स्तम्भ के रूप में गुरुगुण-कीर्तन, साहित्य सत्कार, शोक संवेदन, चिन्तन कण, पाठकों के अभिमत और सम्पादकीय के माध्यम से पाठकों को ढेर सारी सामग्री प्रदत्त करता है। सुधि पाठकगण हमेशा इसकी प्रतीक्षा करते रहते हैं।

—**ब्रह्मचारी संदीप जैन 'सरल'**, बीना (सागर)

सम्पूर्ण अंक पठनीय सामग्री से सुसज्जित है। श्री गुलाबचन्द्र जो जैन द्वारा लिखित निबन्ध 'ग्यारसपुर के दिगम्बर जैन मन्दिर' बहुत ही रोचक एवं ज्ञानवर्धक हैं।

—**डा० लाल चन्द्र जैन**, वैशाली

शोधादर्श के प्रत्येक अंक में सामग्री बड़ी कुशलता व अनुभव का लाभ लेते हुए संकलित की जाती रही है, अतः अंक लाभप्रद ही होते हैं। विचार बिन्दु तथा परिचर्चा लाभप्रद हैं। शोध-सारांश व चिन्तन कण भी पत्रिका के उद्देश्य व लक्ष्य को स्पष्ट करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। थोड़े-थोड़े से में बहुत सारगर्भित जानकारी सामने आती है। गम्भीरता में यत्र-तत्र कुछ उपदेशात्मक वाक्य व लघुकथाओं आदि का यदि समावेश कर दिया जाया करे तो अंक बोझिल होने से बच सकता है।

—**श्री मदन मोहन वर्मा**, ग्वालियर

मैं Minorities Commission of India के Chairman Prof. Tahir Mahmood से मिला था। मुझे बौद्ध विद्या और जैन विद्या का जानकार जान कर उन्होंने इस विषय को छेड़ दिया। उन्होंने बताया कि पिछले दिनों बहुत से जैन संगठनों और महानुभावों ने Commission को पत्र लिखा कि जैनों को भी Minority Status दिया जाना चाहिये। फलतः उन्होंने अपने दौरे में एक जैन प्रतिनिधि सदस्य रखा है। साथ ही कुछ स्थानों से इस बात की भी मांग हो रही है कि जैनों को Minority का दर्जा न दिया जाय। Minority Commission ने यह बात भारत सरकार पर छोड़ दी है।

—**प्रोफेसर डा० संघसेन सिंह,** दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

[इसी अंक के सम्पादकीय में जैनों को धार्मिक अल्पसंख्यक समुदाय की मान्यता दिये जाने के प्रश्न पर एक विवेचना है। इसके पहले भी अंक १२ में श्री रमा कान्त जैन के 'जनगणना और जैन-१९९१ की जनगणना' में, अंक २५ में श्री राजेन्द्र कुमार जैन के 'जैन समाज के समक्ष चुनौती' में और हमारी टिप्पणी में, तथा अंक २८ में स्व० श्री जौहरीमल पारख के 'आत्मघाती मांग' में व हमारी टिप्पणी में, इस प्रश्न पर तथ्य और तर्क दिये गये हैं। यह प्रश्न केवल जैन समाज के विभिन्न वर्गों/समुदायों/सम्प्रदायों को ही नहीं वरन् उस बहुल समाज को भी, जिसके अन्तर्गत भारतीय अस्मिता का सम्पूर्ण समाज बावजूद विभिन्न मत-मतान्तरों और वैचारिक भेद-प्रभेदों के समाहित है, विचार करने को प्रेरित करता है।

जहाँ तक जैन धर्म के स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रखने का और उसका हिन्दू धर्म में आत्मसात कर लिये जाने की आशंका का प्रश्न है जैसा कि बौद्ध धर्म के साथ हुआ था, उसका कोई समाधान जैनों द्वारा अल्पसंख्यक का दर्जा प्राप्त करने से नहीं होगा। अल्पसंख्यकवाद राष्ट्र-विभाजन का एक हेतु तो बन सकता है परन्तु यदि किसी धर्म के अनुयायी स्वयं ही टुकड़ों-टुकड़ों में बंटे हों और अपने आर्थिक-राज-

नैतिक हितों के लिये या देखा-देखी स्वयं ही हिन्दू देवी-देवताओं व साधु-सन्यासियों में आस्था प्रदर्शित करने लगें अथवा उनके धर्मगुरू भी अन्य धर्म गुरूओं जैसा ही या उनसे भी अपेक्षाकृत अधिक आडम्बर पूर्ण एवं सदोष आचरण करने लगें तो 'अल्पसंख्यक' का बिल्ला लग जाने मात्र से जैन धर्म का अस्तित्व सुरक्षित नहीं हो सकेगा। बौद्ध धर्म के भारत से १२वीं-१३वीं शती में विलुप्त हो जाने के उपरोक्त कारण ही थे और पाल साम्राज्य द्वारा प्रदत्त राज्याश्रय भी उसको आत्म रक्षण की सामर्थ्य नहीं प्रदान कर सका था। हम ने Caravan में दिसम्बर १९६३ में Why Buddhism Crumbled ? में बौद्ध धर्म की विलुप्ति का विवेचन किया था।

डा० सिंह को मैंने अपने विचारों से अवगत कराया था। उन्होंने लिखा कि "आप राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के भुलावे में पड़ गये हैं....आप विशाल हिन्दूवाद के नारे से ग्रसित हैं जिनका उद्देश्य है बौद्धों व जैनों को आत्मसात करना।....वस्तुत: राष्ट्र को किसी बाहरी शक्ति से खतरा नहीं है। खतरा है तो रा० स्व० से० सं० जैसे संघटनों से जो देश में फूट पैदा करके उसे कमजोर कर रहे हैं।" मुझे खेद है कि मैं उनके इस अभिमत से सहमत नहीं हूँ। व्यक्तिगत रूप से मैं अल्पसंख्यकवाद के नाम से समाज को बाँटने, टुकडों-टुकड़ों में बिखेरने और राष्ट्र-विमुख मानसिकता को बढ़ावा देने का समर्थक नहीं हो सकता।

संविधान में पर्याप्त प्राविधान हैं जिनके अन्तर्गत कोई भी धर्म अपनी अस्मिता को सुरक्षित रख सकता है। अपना अस्तित्व वह तभी बचाये रख सकता है जब उसमें समय के साथ अपने को साध लेने की क्षमता होगी और अपने समाज में आ गई विकृतियों को स्वयं ही परिशुद्ध करने की सामर्थ्य होगी।

हमारे देश में बाहर से आये इस्लाम और ईसाई धर्मों की स्थिति भिन्न है क्योंकि उनके अनुयायियों को अभी तक यह कलक है कि वे यहां के शासक थे और भारत के बाहर सत्ता-केन्द्रों से

उनका राजनैतिक सम्पर्क सूत्र आज भी बना हुआ है। अल्पसंख्यक के दर्जे के माध्यम से वह एक ऐसे किरायेदार की हैसियत चाहते हैं जो मकान-मालिक को बराबर दबाये रखे। जैन समुदाय समग्र भारतीय समाज का एक अविभाज्य अंग है और मकान-मालिकान में है—वह अल्पसंख्यक बन कर किरायेदार की दशा में क्यों आये ? यही स्थिति नव-दीक्षित बौद्धों की भी है। प्रश्न पर विभ्रम और कदाग्रह छोड़कर खुले मस्तिष्क से गम्भीर चिन्तन राष्ट्रीय अस्मिता के परिप्रेक्ष्य में अपेक्षित है। जब राष्ट्र ही न रह जायेगा—ज़मीन ही न रह जायेगी—तो रहेगा कौन ? क्या मात्र अल्पसंख्यक का साइन बोर्ड ? डा० सिंह एक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं और स्पष्ट ही प्रबुद्ध चिन्तक हैं, अतः इस परिप्रेक्ष्य में भी सोचने का प्रयास अवश्य करेंगे। **—डा० शशि कान्त**]

इस अंक के लेखक

श्री अजित प्रसाद जैन : पारस सदन, आर्यनगर, लखनऊ-२२६००४

डा० (श्रीमती) अलका अग्रवाल : १५४, नज़ाई बाज़ार, ललितपुर-२८८४०३

डा० ऋषभचन्द्र जैन 'फौजदार' : प्राकृत, जैन शास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली-८४४१२८

श्री कैलाश भूषण जिन्दल : अजिताश्रम, गणेशगंज, लखनऊ-२२६०१८

डा० ज्योति प्रसाद जैन (स्व०) : विश्व-विश्रुत विद्वान

डा० (कु०) मालती जैन : श्री चित्रगुप्त स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मैनपुरी-२०५००१

श्री रमा कान्त जैन : ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४

श्री राजीव कान्त जैन : ५४२-ए, रेलवे आफिसर्स कालोनी, कोटा-३२४००२

श्री वेद प्रकाश गर्ग : १४, खटीकान, मुजफ्फरनगर-२५१००२

श्री शांतिलाल के० शहा : कुसुम बंगलो, राजवाड़ा, गणेश दुर्ग, सांगली-४१६४१६

डा० शशि कान्त : ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४

अनुक्रमणिका

[अंक १ से २५ में प्रकाशित विविध सामग्री की अनुक्रमणिका **शोधादर्श-२५** में पृ० १०१–२४ पर और अंक २६ से ३० की अनुक्रमणिका **शोधादर्श-३०** में पृ० ३३३–४१ पर प्रकाशित है। उसी के अनुक्रम में **शोधादर्श** ३१ से ३३ की अनुक्रमणिका नीचे प्रकाशित की जा रही है। पृष्ठ संख्या कोष्ठक में दी गई है।]

लेखक-लेख अनुक्रमणिका :

लेखक	लेख	अंक
डा० ऋषभचन्द्र जैन 'फौजदार' :	206. आवश्यकों की प्राचीन परम्परा	33 (221–30)
श्री कैलाश भूषण जिन्दल :	207. पशुओं के प्रति क्रूरता निवारण अधिनियम	31 (37–39)
	208 दयाभाव (Compassion)—संविधान की अपेक्षा	33 (253–57)
श्री गुलाब चन्द्र जैन :	209. ग्यारसपुर के दिगम्बर जैन मन्दिर	32 (115–21)
डा० ज्योति प्रसाद जैन :	210. Mahavira in the Early Buddhist Literature	31 (8–10)
	211. Some Common Features in Jaina and Buddhist Traditions and Art	32 (98–101)
	212. वृद्धों की समस्या	33 (208–11)
श्री त्रिभुवन प्रसाद तिवारी :	213. भगवान महावीर	32 (106–09)
डा० महेन्द्र सागर प्रचंडिया :	214. बारहमासा में बारह भावना	31 (29–36)
डा० (कु०) मालती जैन :	215. हिन्दी रासो काव्य परम्परा में जैन कवियों का योगदान	33 (230–38)
श्री रमा कान्त जैन :	216. भारत के इतिहास के पुनर्निर्माण में जैन सामग्री के उपयोग की आवश्यकता	33 (246–50)
आचार्य राजकुमार जैन :	217. आडम्बर में जकड़ा हुआ धर्म	32 (110–15)

डा० विश्वनाथ मिश्र : 218. जैन दर्शन, अध्यात्मवादी
काव्य और कबीर 31 (16–23)
श्री वेद प्रकाश गर्ग : 219. राजा चन्द्रगुप्त और आचार्य
भद्रबाहु 33 (239–44)
डा० शशि कान्त : 220. चक्रवर्ती भरत का ऐतिह्य 31 (23–29)

शोध सारांश :

शोध प्रबन्ध **शोधकर्ता**

17. जैन योग और बौद्ध योग का
तुलनात्मक अध्ययन : डा० (श्रीमती) सुधा जैन 32 (122–26)

चिन्तन कण :

13. स्थापना निक्षेप की अवधारणा : श्री सुखमाल चन्द जैन 31 (40–42)
14. भक्तामर स्तोत्र की एक सचित्र
प्रस्तुति : श्री अजित प्रसाद जैन (43–45)
15. चक्रवर्ती भरत : श्री अजित प्रसाद जैन 32 (127–31)
16. नास्तिक क्यों ? : डा० शशि कान्त 33 (260–65)

विचार-बिन्दु :

13. क्या वेद में इतिहास है ? : आचार्य शिवचन्द्र शर्मा
32 (131–34, 39)
14. जैन मतानुसार विवाह पद्धति का आरम्भ :
डा० एम० डि० वसन्तराज (135–38)
15. वैदिक साहित्य में सामाजिक चेतना :
डा० (श्रीमती) अलका अग्रवाल 33 (251–52)

सम्पादकीय अग्रलेख : श्री अजित प्रसाद जैन—

16. मन्दिरों में चोरियाँ 31 (11–15)
17. कलिकाल तीर्थंकर 32 (101–05, 09)
18. जैन समाज को अल्पसंख्यक की मान्यता 33 (212–20, 257–59)

परिचर्चा :

5. पुण्य क्या है ? श्रमण कौन है ? उपादेय किम :
श्री शान्तिलाल के० शाह 32 (139–40)
डा० शशि कान्त (140–44)
6. जिज्ञासा : श्री शान्तिलाल के० शाह 33 (266–67)

समाचार विमर्श : श्री अजित प्रसाद जैन—

62. आचार्य श्री का निर्वाण महोत्सव 31 (72–74)

63. अनशन तप का नया कीर्तिमान 31 (75)
64. मुस्लिम बालिका द्वारा अनशन तप (75-76)
65. गोशाला शिलान्यास [76]
66. वीर सेना का गठन (76-77)
67. ॐ ह्रीं ज्ञानमत्यै नमः 32 (167-69)
68. आचार्य सन्मति सागर प्रकरण—जस का तस (169-75)
69 भट्टारक जी द्वारा वाहन प्रयोग का त्याग (175-78)
70. एक नई भट्टारक पीठ की स्थापना (178-79)
71. पावापुरी में प्राचीन चरण बदले गये ? (179-83)
72. महासभा प्रबन्धकारिणी की बैठक (183-86)
73. आशा की एक किरण 33 (276-81)

गुरुगुण-कीर्तन : श्री रमा कान्त जैन—

30. सोमदेव सूरि 31 (5-7, 10)
31. वादीभ सिंह 32 (93-97)
32. भट्टारक सकलकीर्ति 33 (205-07)

रिपोर्ट :

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र० :
श्री अजित प्रसाद जैन, महामंत्री—

13. प्रगति प्रतिवेदन वर्ष १९९६-९७ 32 (145-50)

इतिहास-मनीषी डा॰ ज्योति प्रसाद जैन : रिपोर्ट—श्री रमा कान्त जैन—

15. जन्म जयन्ति (६-२-१९९७) 31 (46-48)
16. पुण्य तिथि पर काव्य गोष्ठी (११-६-१९९७) 32 (150-52)

अन्य रिपोर्ट :

4. लखनऊ में 'जैन विद्या के विविध आयाम' पर संगोष्ठी : डा० अरविन्द कुमार श्रीवास्तव 32 (153-55)

सम्पादकीय : डा० शशिकान्त—

24. टिप्पणी—सन्मति सागर प्रकरण पर 32 (175)
25. शुद्धि-परिशोधन—चक्रवर्तियों के सम्बन्ध में (196)
26. टिप्पणी—प्राकृत के सम्बन्ध में (198)
27. —वृद्धों की समस्या पर 33 (208)
28. —चन्द्रगुप्त व भद्रबाहु पर (244-45)
29. —अल्पसंख्यकवाद पर (299-301)

पद्य रचनायें :

श्री प्रकाश चन्द्र जैन 'दास' : 36. श्रद्धा-सुमन 31 (46-47)

डा० महावीर प्रसाद जैन : 37. भावाञ्जलि 31 (47-48)
श्री रमा कान्त जैन : 38. क्षणिका—सन्मति का मिलाप 32 (175)
39. श्री महावीर जी सहस्राब्दि 33 (282)
श्री राजीव कान्त जैन : 40. पूत कपूत से मां बांझ भली 33 (283)
साहित्य सत्कार (समीक्षा) :
श्री अजित प्रसाद जैन : 31 (49-58), 33 (267-70)
श्री रमा कान्त जैन : 31 (58-63), 32 (156-62), 33 (270-73)
डा० शशि कान्त : 31 (63-71), 32 (162-66), 33 (273-76)
विविध स्तम्भ : संकलन-श्री रमा कान्त जैन—
समाचार विविधा :
31 [79-80], 32 [190-92], 33 [286-90]
अभिनन्दन—शोध की सफलता, आदि :
31 [77-78], 32 [187-89], 33 [284-85]
शोक संवेदन :
31 [81], 32 [192-95], 33 [290]
आभार/प्राप्ति स्वीकार :
31 [82], 32 [195], 33 [291]
लेखक परिचय :
31 [88], 32 [कवर पृष्ठ], 33 [301]
पारखी पाठक :
218. पं० अमृत लाल शास्त्री, वाराणसी 31 [83], 32 [198]
219. श्री आदित्य जैन, लखनऊ 31 [84], 32 [199]
220. श्री आनन्द प्रकाश जैन, हस्तिनापुर 32 [200]
221. डा० ओम प्रकाश अग्रवाल जैन, लखनऊ 31 [86-87]
222. डा० ए० एल० श्रीवास्तव, लखनऊ 32 [196]
223. प्रो० एल० सी० जैन, जबलपुर 31 [86]
224. डा० ऋषभचन्द्र जैन 'फौजदार', वैशाली 32 [203]
225. श्री कमल कुमार जैन, सिरसा 32 [204]
226. डा० कैलाश नाथ द्विवेदी, कोंच 31 [87], 33 [295]
227. डा० कृष्ण पाल त्रिपाठी, बलिपुर टाटा [कौशाम्बी] 33 [296]
228. श्रीमती गीता जैन, मुम्बई 31 [84]
229. श्री जमनालाल जैन, वाराणसी 31 [84]
230. डा० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, आगरा 32 [199]
231. डा० [श्रीमती] जैनमती जैन, आरा 32 [201]

232. श्री त्रिलोक मुनि [गुजरात] 31 [85], 32 [204]
233. श्री दिग्दर्शन चरण जैन, नई दिल्ली 33 [295]
234. डा० दिनेन्द्र चन्द्र जैन, आरा 31 [84]
235. श्री नरेन्द्र कुमार जैन, देहरादून 32 [199]
236. श्री नवनीत जैन, मेरठ 32 [203]
237. श्री नीरज जैन, सतना 31 [85]
238. डा० [श्रीमती] नीलम जैन, सहारनपुर 31 [85]
239. डा० नमीचन्द, इन्दौर 33 [291-92]
240. पं० पद्मचन्द्र शास्त्री, नई दिल्ली 32 [200], 33 [294]
241. डा० परमानन्द जड़िया, लखनऊ 33 [296-97]
242. डा० भागचन्द्र जैन 'भास्कर', नागपुर 33 [293]
243. श्री मदन मोहन वर्मा, ग्वालियर 32 [196-97], 33 [298]
244 श्री मनोहर मारवडकर, नागपुर 33 [297-98]
245. श्री महावीर प्रसाद जैन सर्राफ, दिल्ली 32 [200], 33 [295]
246. डा० महेन्द्र सागर प्रचंडिया, अलीगढ़ 31 [83]
247. डा० [कु०] मालती जैन, मैनपुरी 32 [202], 33 [295]
248. श्री मोती लाल जैन 'विजय', कटनी 32 [204], 33 [293-94]
249. डा० रतन लाल जैन, हांसी 33 [293]
250. श्री रन्जीत सुन्दर दास जैन, आरा 32 [200]
251. डा० रवीन्द्र कुमार जैन, चेन्नई 31 [85]
252. आचार्य राजकुमार जैन, दिल्ली 32 [199]
253. श्री राजेन्द्र नगावत, इन्दौर 31 [85-86]
254. डा० लाल चन्द्र जैन, वैशाली 33 [298]
255. प्रा० सौ० लीलावती जैन, जलगांव 33 [293]
256. श्रीमती वासंती शहा, पुणे 31 [84]
257. श्रीमती विमला जैन, कटनी 32 [204]
258. डा० विनोद कुमार तिवारी, रोसेड़ा 32 [200], 33 [295]
259. श्री वेद प्रकाश गर्ग, मुजफ्फरनगर 31 [83], 32 [199]
260. श्री शरद कुमार जैन, नजीबाबाद 32 [201]
261. श्री शांतिलाल के० शहा, सांगली 31 (84), 33 (294)
262. श्रीमती शारदा जैन, लखनऊ 33 [294]
263. आचार्य शिवचन्द्र शर्मा, सहारनपुर 32 (199), 33 (296)
264. डा० शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी लखनऊ 33 (293)
265. डा० श्रीरंजन सूरिदेव, पटना 31 (86), 33 (296)
266. डा० संघसेन सिंह, दिल्ली 33 (299-300)
267. ब्र० संदीप जैन 'सरल', बीना 31 (86), 32 (200), 33 (298)
268. श्री सुखमाल चन्द जैन, नई दिल्ली 33 (292-93)
269. श्री सुन्दर सिंह जैन दिल्ली 32 (200)
270. डा० (श्रीमती) सुनीता कुमारी, रुड़की 32 (203)
271. डा० सुदीप जैन, नई दिल्ली 32 (197-98)
272. डा० (श्रीमती) सुधा जैन, वाराणसी 33 (293)
273. श्री हुकम चन्द जैन, मेरठ 32 (203)

આ
જૈ
જ્ઞા
કો